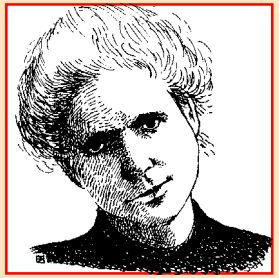

'वैज्ञानिक' शब्द सुनते ही मन में कैसी तस्वीर बनती है? शायद एक गंभीर सा, चश्मा लगाए गहरे सोच-विचार में खोए पुरुष की। किसी हंसमुख महिला का चेहरा तो इस शब्द के साथ कभी जुड़ ही नहीं पाता। भला ऐसा क्यों? तुम शायद कहो कि महिलाएं वैज्ञानिक होती ही नहीं हैं। पर वास्तव में ऐसी बात नहीं है। हां, यह सच है कि पुरुषों की तुलना में बहुत कम। पर इससे एक और सवाल उभरता है कि ऐसा क्यों? यह भी कतई सच नहीं है कि महिलाओं में बुद्धि या कौशल की कमी होती है। पर अक्सर ऐसा कहा जाता है कि उनमें विज्ञान के प्रति रुचि नहीं होती। वास्तव में इन धारणाओं के पीछे सामाजिक कारणों की महत्वपूर्ण भूमिका है। बचपन से ही लड़की को घर-गृहस्थी के कामों में ज़्यादा डाला जाता है। उनके लिए घर-चूल्हा या गुड्डा-गुड्डी के खेल ही उचित समझे जाते हैं। आमतौर पर हर बात का एक ही जवाब होता है, 'ऊंह, लड़की है! उसे तो आखिर किसी का घर ही संभालना है। बस घर-गृहस्थी की चीज़ें सीख ले। वही काम आएंगी।' दूसरी तरफ लड़कों को हर ऐसे काम में डाला जाता है जिन्हें वे करना चाहते हैं। चाहे फिर वह साइकिल चलाना हो या बिजली का फ्यूज़ ठीक करना। बिजली का फ्यूज़ ठीक करना लड़के के लिए एक आवश्यक प्रशिक्षण है और लड़की के लिए जान का खतरा! इसी तरह पढ़ाई या अन्य ऐसे कार्य जिनमें सोचने-समझने या दिमाग लगाने की बात है शुरू से ही लड़कों के लिए सुरक्षित रखे गए हैं। लड़कियों के पल्ले बस वही—घर का काम, बच्चों की देखभाल आदि।

तो जब समाज ने बचपन से ही ऐसा बंटवारा कर दिया है तो फिर भला लड़कियों को कहां मौका मिलेगा—वैज्ञानिक बनने का, कई साल सतत् पढ़ाई करने या शोध कार्य करने का। और फिर इन सब चीज़ों के लिए स्कूल और कॉलेजों की प्रयोगशाला, लायब्रेरी आदि में भी अतिरिक्त समय लगाना पड़ता है। इसके लिए सामाजिक बंधनों से मुक्ति आवश्यक है। आखिर घर से बाहर पढ़ने जाना, लड़कों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर देर तक काम करना, जल्दी ब्याही न जाना, घर के रोज़मर्रा के कामों में परिवार के पुरुष सदस्यों का सहयोग चाहना, काम के सिलसिले में अकेले शहर से बाहर जाना, यात्रा करना—ये सभी बातें समाज के सामान्य रीति रिवाज़ों के विपरीत ही तो मानी जाती हैं।

वे महिलाएं जो इस ढर्रे से हटकर, स्वतंत्र होकर अपना विकास या काम कर पाईं, जिन्होंने सदियों से प्रतिबंधित पुरुषों की जागीरदारी में कदम रखने का साहस उठाया; सफल हुईं। मादाम क्यूरी भी ऐसी ही एक महिला है जिसने अनेकों रुकावटों को लांघकर विश्व में एक सर्वश्रेष्ठ वैज्ञानिक के रूप में अपने को स्थापित किया। और दिखाया कि 'वैज्ञानिक' फ्रेम में एक प्यारा-सा हंसता हुआ भोला चेहरा भी अच्छी तरह फिट होता है।

भारत ज्ञान विज्ञान समिति

मूल्य: 12 रुपए B-62 Price 12 Rupees

रेडियम महिला

मारी क्यूरी

गीता बंदोपाध्याय

इस किताब का प्रकाशन भारत ज्ञान विज्ञान समिति ने देश भर में चल रहे साक्षरता अभियानों में उपयोग के लिए किया गया है। जनवाचन आंदोलन के तहत प्रकाशित इन किताबों का उद्देश्य गाँव के लोगों और बच्चों में पढ़ने-लिखने की रुचि पैदा करना है।

मारी क्यूरी
गीता बंदोपाध्याय
अनुवाद : त्रिभुवन नाथ

जनवाचन बाल पुस्तकमाला के तहत
भारत ज्ञान विज्ञान समिति द्वारा प्रकाशित

साभार : चकमक *फरवरी 1989*

चित्रांकन : कैरन हेडॉक
ग्राफिक्स : अभय कुमार झा

प्रकाशन वर्ष: 2003, 2006

मूल्य: 12 रुपए

Published by Bharat Gyan Vigyan Samithi
Basement of Y.W.A. Hostel No. II, G-Block
Saket , New Delhi - 110017
Phone : 011 - 26569943
Fax : 91 - 011 - 26569773
email: bgvs@vsnl.net

रेडियम महिला
मारी क्यूरी

गीता बंदोपाध्याय

रेडियम महिला

मारी क्यूरी

मान्या का बचपन

मान्या बेचारी को पता भी नहीं था कि चार साल पहले, यानी उसके जन्म के ठीक बाद, उसकी मां को तपेदिक ने धर दबाया था। यह बात सिर्फ घर के बड़े लोगों को मालूम थी।

मां अक्सर खांसती रहती। खांसते-खांसते कलेजा मुंह में आ जाता। मान्या दौड़ी-दौड़ी मां के पास जाती। मां के गले से लिपटकर अपना प्यार जताना चाहती। लेकिन मां चालाकी से किसी न किसी तरह उसे दूर हटा देती। तपेदिक तो छूत की बीमारी है न! मां को मान्या बहुत प्यारी थी। मां उसी को सबसे ज़्यादा चाहती थी। उसे इस तरह दूर करने में मां को कितना दुख होता होगा। लेकिन मान्या यह सब न जानती थी। मां उसे जानने भी न देती।

मान्या की तीन बहनें थीं और एक भाई। सबसे बड़ी बहन अभी सिर्फ बारह साल की थी। फिर भी, दूसरे भाई-बहनों के मुकाबले अपने को वह पुरखिन समझती थी। मान्या को लेकर वही घूमने निकलती। वही उसकी चौकसी करती।

उससे छोटा था भाई। नाम था जोज़फ। अव्वल दर्ज़े का शरारती। क्या मज़ाल कि क्षण भर चुप होकर बैठ जाए। चुप बैठना तो मानो उसके लिए सज़ा थी। हां, पढ़ने-लिखने में उसका दिमाग बहुत तेज़ था।

मंझली बहन का नाम था ब्रोन्या। वह अभी पढ़ना-लिखना सीख ही रही थी।

तीसरी बहन का नाम था हेला। हेला और मान्या बस इधर-उधर खेलती-कूदती फिरतीं। कभी-कभी मान्या भी पढ़ने की इच्छा प्रकट करती। लेकिन मां और बापू कहते, ''बेटी! अभी तुम्हारी पढ़ने की उम्र नहीं है। अभी खाओ-खेलो।''

मान्या के बापू का नाम था व्लादिस्लाव स्क्लोडोव्स्की। एक स्कूल में मास्टर थे वह। मां, मादाम स्कलोडोव्स्का, वारसा नगर की लड़कियों के प्रसिद्ध स्कूल की प्रधान अध्यापिका रह चुकी थीं।

उन दिनों पोलैण्ड में शासन था रूस के ज़ार का। मतलब यह कि पोलैण्ड पराधीन था। पराधीन पोलैण्ड की स्त्रियां और भी पराधीन थीं। लड़कियों को पढ़ाने-लिखाने का रिवाज़ बहुत कम था। मान्या की मां जैसी कुछ इनी-गिनी उत्साही अध्यापिकाएं थीं जिनकी देख-रेख में लड़कियों के दो-चार स्कूल खुल गए थे। लेकिन कालेजों-विश्वविद्यालयों के द्वार उनके लिए अब भी बंद थे।

मादाम स्क्लोडोव्स्का को बेहद परिश्रम करना पड़ता। हेला, उनकी तीसरी बेटी, गोद में थी। स्कूल से सटे एक मकान में ये लोग रहते थे। स्कूल और मकान पास-पास थे। पति-पत्नी जोड़-तोड़ बैठाकर किसी तरह काम चला लेते।

1867 की 7 नवम्बर को मादाम स्क्लोडोव्स्का की गोद में एक नया शिशु खेलने लगा... नन्हीं-मुन्नी छोटी-सी बच्ची! मादाम स्क्लोडोव्स्का कल्पना भी नहीं कर सकती थीं कि यही भोली-भाली, बालिस्त बराबर बिटिया, एक दिन संसार के श्रेष्ठ वैज्ञानिकों में गिनी जाएगी।

1868 में व्लादिस्लाव स्क्लोडोव्स्की को मिली तरक्की। अब मकान बदलना उनके लिए ज़रूरी हो गया। मादाम स्क्लोडोव्स्का को स्कूल के निकट कोई घर नहीं मिला।

और, कुछ ही दिन बाद उन्हें तपेदिक ने धर दबाया। सुखी परिवार पर पहली बार दुख की कालिमा छा गई। मज़बूर होकर उन्हें स्कूल का काम छोड़ना पड़ा। लेकिन वह खाली हाथ बैठने वाली स्त्री तो थीं नहीं! बच्चों की देख-भाल से जब भी फुर्सत मिलती वह लगे हाथ जूते की सिलाई का काम भी सीखती जातीं। ज़्यादा परिश्रम करना मना था। इसलिए घर पर बैठकर बच्चों के लिए वह मामूली किस्म के जूतों की सिलाई करती रहतीं।

अपने जन्म-काल से ही मान्या कुछ शब्द बराबर सुनती आई थी। ये शब्द थे, ''रूस का ज़ार,'' ''षडयंत्र,'' ''साइबेरिया,'' इत्यादि-इत्यादि।

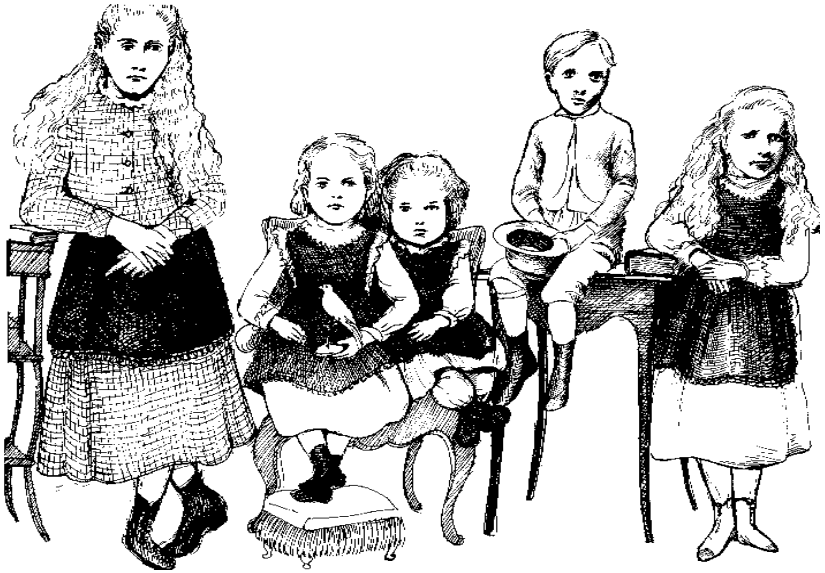

पराधीन पोलैण्ड बार-बार सिर उठाकर खड़े होने का प्रयत्न करता। बार-बार पोलैण्ड विद्रोह करता। 1863 में तो पोलैण्ड की विद्रोही जनता, निहत्थी जनता, ताल ठोककर ज़ार का मुकाबला करने के लिए उठ खड़ी हुई थी। लेकिन जनता थी निहत्थी। ज़ार ने विद्रोही नेताओं को फांसी पर लटका दिया। सोचा, अब कभी जनता आज़ादी के रास्ते पर पांव बढ़ाने का साहस नहीं करेगी। स्कूल-कालेज, आफिस-दफ्तर, सब जगह कड़ा शासन कायम कर दिया गया।

जासूसों के गिरोह-के-गिरोह सिखा-पढ़ाकर तैयार किए जाने लगे। स्कूल के लड़के-लड़कियां रूसी भाषा छोड़ दूसरी सभी भाषाओं से घृणा करें— इसके लिए विशेष शिक्षा की व्यवस्था कर दी गई। पोलैण्ड में ऐसे लोगों की कमी न थी जो कमज़ोर स्वभाव के थे, जिन्हें देश के साथ गद्दारी करते, खुफिया पुलिस के रजिस्टर में अपना नाम लिखाते, शर्म न आती। देश की जनता इनके ऊपर थू-थू करती। स्कूलों में लुके-छिपे पोलिश भाषा में पोलैण्ड का इतिहास पढ़ाया जाता। अध्यापक-अध्यापिकाओं, लेखकों-कलाकारों, पादरी-पुरोहितों में अधिकांश लोग देश की स्वतंत्रता के पुजारी थे। ऐसे लोगों में ही थे मान्या के मां और बापू।

जिस स्कूल में मान्या के बापू पढ़ाते उसके प्रिंसिपल, मोशिये इवानोव थे, रूस के जासूस। सो मान्या के बापू और उनमें शुरू से ही झगड़ा होता रहता। मान्या के बापू जब भी प्रिंसिपल इवानोव को ज़ोर-ज़ुल्म करते देखते उनका विरोध करने से

न चूकते। इवानोव गुस्से से दांत पीसता; गुर्राता; मौके की ताक में रहता। वह इस स्वाधीनता-प्रेमी देशभक्त को मज़ा चखाने की बातें सोचा करता।

मान्या थी अभी निरीह बच्ची। उसके मन में ये बातें, अलग ही अलग, ऊपर-ऊपर, तैरती रहतीं। उन्हें वह एक सूत्र में न पिरो पाती। कभी-कभी उसे प्रिंसिपल पर बड़ा गुस्सा आता। लेकिन बस। इससे ज़्यादा वह कुछ न समझ पाती। मान्या को अपने बापू सबसे अच्छे तब लगते जब वह अपने काम के कमरे में बैठकर चमचम करती कांच की अलमारी से तरह-तरह के साज-समान, आले-औज़ार, निकालते और तरह-तरह से उन्हें हिलाते-डुलाते। बापू अपने काम में तन्मय हो जाते।

सो, एक दिन स्कूल का काम-काज खत्म कर बापू घर लौटे और अपने काम में जुट गए। तभी न जाने कहां से चुपके-चुपके मान्या उनके पास आ धमकी।

कौन?

मान्या। वह बापू के काम के पास मुंह ले जाकर बोली, ''यह क्या है, बापू?'' बापू ने चौंक कर आंखें उठाईं। क्षण भर उसकी ओर देखते रहे। फिर बोले ''ये सब पदार्थ-विज्ञान के आले-औज़ार हैं, बेटी!''

स्कूल से लौटकर, सरकारी काम-काज से छुट्टी पाकर, बापू पदार्थ-विज्ञान के साज-समान को लेकर तरह-तरह की खोजें करते। बापू के कांच के ये तरह-तरह के खिलौने मान्या को बड़े प्यारे लगते। गाने के सुर में वह गुन-गुनाने लगती,

''प..... दा..... र्थ..... वि..... ज्ञा..... न! आ..... ले..... औ..... ज़ा..... र!''

देखते-देखते मान्या बड़ी हुई। उसे भी अपने भाई-बहनों के साथ बापू के कमरे में बैठने और वहां बैठकर पढ़ने-लिखने की इज़ाज़त मिल गई। दबे गले से गुनगुन करती और पढ़ती हुई बीच-बीच में आंखें उठाकर वह अपने बापू की चमकती अलमारी को भी देख लेती। वह भी तो एक दिन औज़ारों से प्रयोग करना सीखेगी न!

अब स्कूल के रजिस्टर में मान्या का भी नाम लिख गया, ''मारी स्क्लोडोव्स्का।''

दस साल की लड़की थी वह। अपनी क्लास में सबसे छोटी, लेकिन पढ़ने-लिखने में सबसे तेज़। एक बार जो कुछ सुन लेती; पढ़ लेती, उसे कभी न भूलती। किसी कविता को दो-चार बार अगर उसने पढ़ लिया तो फिर क्या है! बिना किताब देखे पूरी कविता फर्राटे से सुना देती। कुछ लोग सोचते कि मान्या ज़रूर चुपके-चुपके पढ़ती होगी। बड़ी तेज़ थी उनकी स्मरण-शक्ति।

''मारी स्क्लोडोव्स्का!''

''जी, अध्यापिका जी।''

''पोलैण्ड का इतिहास तो पढ़ा है न? बताओ तो स्तानिस्लास ऑगस्टस कौन था?

''स्तानिस्लास ऑगस्टस 1764 में पोलैण्ड के राजा चुने गए थे। वह बड़े विद्वान और बुद्धिमान थे। उन्होंने अपने राज की कमज़ोरी और अन्दरूनी गड़बड़ी को समझा, लेकिन वह आवश्यक सुधार नहीं कर पाए। उनमें साहस की कमी थी.....।''

पोलैण्ड का इतिहास ये लोग पोलिश भाषा में पढ़ते थे। और यह था बिल्कुल ग़ैर-कानूनी काम। अध्यापिका अन्तोनिना तुपालस्का बड़ी लगन से और बड़े जतन से उन्हें पढ़ातीं। किसी क्रांतिकारी के समान ही उनका चेहरा निश्चल और गम्भीर था।

दस-बारह साल के कुछ बच्चे तुपालस्का को घेरे बैठे हैं। अध्यापिका उन्हें पढ़ा रही हैं। कुछ बच्चों की चमकती आंखें उन पर टिकी हैं। न जाने कब के, किस पुराने ज़माने के, राजा के गुण-दोषों की चर्चा हो रही है।

क्या-क्या गलतियां की थीं उस राजा ने? क्या-क्या अच्छाइयां थीं उसमें?

टन-टन टन-टन .....

यकायक घंटा दो बार टनटना उठा। एक अजीब-सी झनझनाहट हवा में गूंज उठी— दबी हुई, रुंधी हुई आवाज़ जैसी।

कमरे में मानों बिजली दौड़ गई। फौरन चार लड़कियां सारी किताबें बटोरकर न जाने किधर हवा हो गईं। देखते ही देखते व फिर लौट आईं। कब गईं और कब आईं कुछ पता ही न चला। सब लड़कियों ने सिलाई के कपड़े हाथ में ले लिए। हरेक के हाथ में कपड़ा। कपड़े पर महीन-महीन बखिया किया जा रहा है। लेकिन सभी लड़कियों की सांस तेज़ थी2।

कमरे का दरवाज़ा खुला। मोशिये हार्नबर्ग के अंदर पैर रखे। यही थे स्कूल के इंस्पेक्टर। चमकदार भड़कीली वर्दी। चमचमाते बटन। अंदर आकर उन्होंने पहले तो बड़े गौर से सब लड़कियों को देखा, फिर मानो धोखे से एक मेज़ की दराज़ खोली और उसमें झांका। नहीं, उसमें भी कोई किताब-कॉपी न थी।

हार्नबर्ग के साथ स्कूल की प्रधान अध्यापिका भी थीं। वह तो जैसे अपने इष्ट देव का सुमिरन कर रही थीं। हाय भगवान! पता नहीं चपरासी ने घंटा ठीक समय पर बजाया है या नहीं?

''ज़ोर-ज़ोर से आप क्या पढ़ा रही थीं?'' होंठ चबाते हुए हार्नबर्ग ने पूछा।

''आज से बच्चों को क्रिलोव की परियों की कहानियां सुनानी शुरू की हैं,'' शांत स्वर में तुपालस्का ने उत्तर दिया।

मान्या की छाती धक-धक करने लगी। क्लास की सबसे तेज़ लड़की वही थी न! सभी सरकारी मुआयनों में सबसे पहले उसी की पुकार होती थी।

''मारी स्क्लोडोव्स्का!''

नाम सुनते ही मान्या के चेहरे का रंग उड़ गया। बेचारी डरती-सहमती सामने आई।

पहले तो उससे रूसी भाषा में प्रार्थना बुलवाई गई। फिर प्रश्नों की झड़ी लगा दी गई। ''बताओ तो, पोलैण्ड का स्वामी कौन है?'' उत्तर था, ''रूस का पवित्र ज़ार।'' उत्तर देते-देते मान्या का चेहरा पीला पड़ चला। फिर भी हार्नबर्ग उसे किसी सवाल की लपेट में न ला सके।

हार्नबर्ग साहब बहुत खुश हुए। गज़ब की याददाश्त है इस लड़की की। उच्चारण भी कितना साफ सुथरा! कौन कहेगा यह लड़की रूस में पैदा नहीं हुई!

आखिर किसी तरह यह दिल-दहलाऊ परीक्षा समाप्त हुई। हार्नबर्ग उठकर दूसरी कक्षा में चला गया।

तुपालस्का का गला भर आया। दोनों हाथ बढ़ाकर धीमी आवाज़ में उन्होंने पुकारा, ''इधर आओ! इधर आओ प्यारी बेटी!''

मान्या पास खिसक आई। अब तक जो अपमान वह चुपचाप पी रही थी, वही आंसू बनकर आंखों से बरस पड़ा। झर-झर झर-झर आंसू बहने लगे।

घर हो या बाहर, सभी जगह बड़ी कठिन और पेचीदा समस्याएं सामने थीं। अपनी उम्र के लिहाज़ से मान्या सचमुच बहुत गम्भीर, सचमुच बहुत बड़ी, हो गई थी।

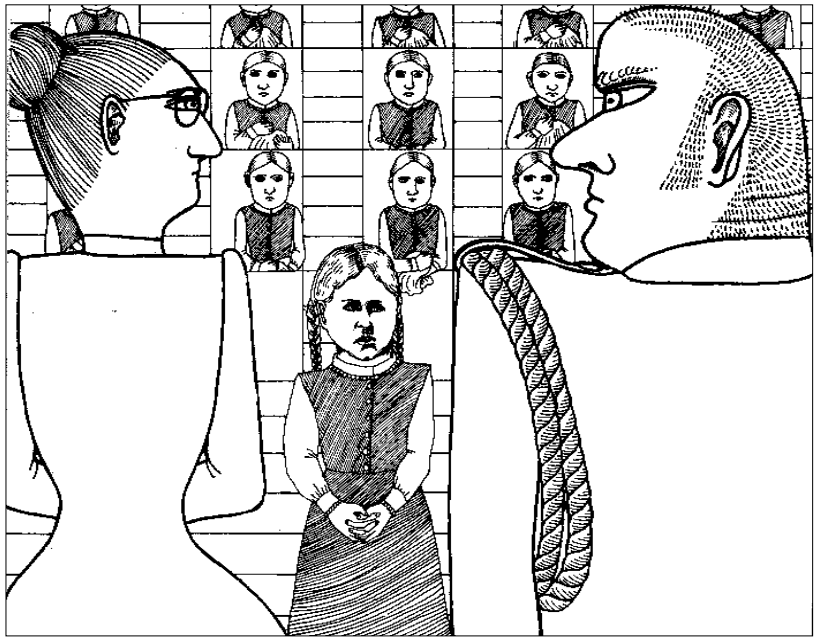

मां की बीमारी बढ़ती गई, बढ़ती गई, बहुत बढ़ गई। सुन्दर, बड़ी-बड़ी आंखें थीं उनकी, कान तक खिंची हुई। और, अब इन्हीं आंखों में नाच रही थी मृत्यु की छाया।

मां तो बीमार थीं ही, बापू की नौकरी भी चली गई। प्रिंसिपल इवानोव ने स्क्लोडोव्स्की की नौकरी छीन ली। लेकिन मान्या के बापू को इससे दबाया तो जा नहीं सकता था। उन्होंने फिर एक छोटे-से स्कूल में नौकरी कर ली। मकान भी बदल लिया। दूसरे घर में रहने लगे। खाने-पीने और पढ़ाई के खर्च पर कुछ विद्यार्थियों को घर पर ही रख लिया।

घर की शांति जैसे नष्ट हो गई। पढ़ने-लिखने के कमरे में अब पहले जैसा शांत वातावरण कहां? लड़के खूब शोर मचाते। सारे घर को गंदा किए रहते। तो भी, आबोहवा बदलने के लिए मान्या की मां को समुद्र किनारे जाना ही था। और समुद्र किनारे उन्हें भेजने के लिए बापू को खर्चे का प्रबंध करना ही था।

कहावत है, विपत्ति जब आती है तो अकेली नहीं आती। बापू के थे एक कुटुम्बी। इन कुटुम्बी महोदय ने रोज़गार लगाने के नाम पर अपनी सारी कमाई स्वाहा कर दी। लड़कियों के विवाह में दहेज़ के लिए रुपए की बात तो दूर, लड़कियों को पढ़ाने-लिखाने के लिए भी पैसा पास न बचा।

और इसके कुछ ही दिनों बाद मान्या की बड़ी बहन जोशिया, टाइफस की बीमारी में चल बसी। मान्या समझ भी न पाई कि बड़ी दीदी कहां चली गई है। एक धुंधला-सा खतरा, एक भारी-सा बोझ उसके मन पर छा गया। मान्या अपनी मां के मुंह को निहारती। लेकिन मां के मुंह को देखकर अपने को और भी असहाय पाती।

दस वर्ष की मान्या जीवन की कटु-कठोर विपदाओं से छुटकारा पाने के लिए जी-जान से पढ़ाई में जुट गई। पढ़ती वह गद्य, पद्य और परियों की कहानियां। स्कूल से पढ़कर लौटती तो फिर घर में किताबों की दुनिया में डूब जाती।

आह! किताबों की दुनिया! वहां हार्नबर्ग नहीं! जोशिया दीदी की मौत नहीं! वहां दुख और अभाव नहीं! मां की बड़ी-बड़ी आंखों से झांकती मृत्यु की काली छाया नहीं!

गुलाम पोलैण्ड में उन दिनों पढ़ना-लिखना कोई आसान काम नहीं था। जो कुछ सीखना होता, रूसी भाषा में। जर्मन और फ्रान्सीसी भाषा सीखने की पुस्तकें भी रूसी भाषा में थीं। अपनी मातृभाषा में बच्चे साधारण लेख तक नहीं लिख सकते थे।

मान्या सभी को ताज्जुब में डाल देती। उसे देखकर सभी ताज्जुब में आ जाते। बात की बात में वह सब कुछ सीख लेती; जैसे जादू-मंतर जानती हो। रूसी कविताएं तो बात की बात में याद हो जातीं उसे। कभी कोई किताब लेकर बैठती तो उसे और किसी बात की सुध ही न रहती। सिर पर शोर-गुल मचता हो, मचता रहे। धमा-चौकड़ी मचती हो, मचती रहे! मान्या जब तक पढ़ना खत्म न कर लेती, अपनी जगह से न हिलती।

एक बार एक विचित्र घटना घटी।

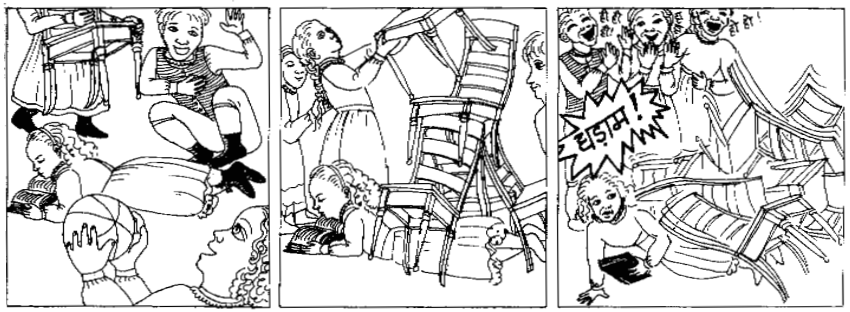

मान्या बैठी पढ़ रही थी। बड़े ध्यान से कोई किताब पढ़ रही थी। कुछ और लड़के-लड़कियां भी वहां थे। उन्होंने सोचा, मान्या को चिढ़ाने की कोई तरकीब की जाए।

सो, वे पांच कुर्सियां लाए। चार कुर्सियां उन्होंने मान्या के चारों तरफ रख दीं। फिर, मान्या के सिर के ऊपर, उन्हीं कुर्सियों के सहारे, पांचवी कुर्सी खड़ी कर दी।

अब क्या था! लगे सब ज़ोर-ज़ोर से हंसने! लेकिन मान्या है कि उसे न कुर्सियों के स्तूप का ध्यान, न हंसी का, न शोर-गुल का। वह बस पढ़ने में मगन रही।

पढ़ाई खत्म कर ज्यों ही वह उठी, कुर्सियों का स्तूप सिर के धक्के से ज़ोर से नीचे गिरा। छिल ही तो गया मान्या का कंधा। क्रोध से फुफकारती, पांव पटकती, वह पास वाले कमरे में चली गई।

जब भी मान्या पढ़ने बैठती, उसे दीन-दुनिया की खबर न रहती। वह मानो मंत्र के ज़ोर से अपने मन को खींचकर, समेटकर, पढ़ने बैठती।

और एक दिन वही हुआ, जिसका मान्या को डर था। मां मृत्यु शैय्या पर थीं। अपनी दुलारी मान्या को उन्होंने पास बुलाया। उसे आशीर्वाद दिया। आखिरी सांस छोड़ती हुई वह कह गई, तुम सब को मेरा प्यार!

मान्या का मन विद्रोह कर उठा! कितनी बार उसने भगवान से विनती की थी कि उसकी मां को अच्छा कर दें। लेकिन भगवान थे कि इतनी-सी भी विनती न सुनी। मनुष्य का इतना-सा भला न कर सके! फिर क्यों वह गिरजाघर जाए! क्यों पूजा-पाठ करे! नहीं, अब मान्या गिरजाघर नहीं जाएगी, नहीं जाएगी! मान्या विद्रोही है!

विश्वविद्यालय

दुख और दुर्दिन ही सदा जीवन में नहीं रहते। स्क्लोडोव्स्की परिवार के अच्छे दिन भी लौटे। अनेक कठिनाईयों के होते हुए बापू ने चारों भाई-बहनों को पाल-पोस कर बड़ा किया। मान्या की मंझली दीदी ब्रोन्या और भाई जोज़फ को स्कूल की फाइनल परीक्षा में सोने के पदक मिले।

डाक्टरी पढ़ने के लिए बापू ने जोज़फ को यूनिवर्सिटी में भर्ती करा दिया। लेकिन ब्रोन्या? बेचारी ब्रोन्या को यह सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ!

उन दिनों लड़कियों को विश्वविद्यालय में पढ़ने की इज़ाज़त नहीं थी। कोई लड़की अगर ऊंची शिक्षा पाना चाहती तो उसके सामने दो ही रास्ते थे, या तो घर पर बैठी-बैठी किताबों से सिर मारे या देश छोड़कर पढ़ने के लिए कहीं और निकल जाए।

विदेश जाना ब्रोन्या के लिए मुमकिन था नहीं। इतना रुपया कहां से आए कि ब्रोन्या विदेश जाए। सो उसने बापू से कहा कि कुछ दिन वह वारसा में रहेगी। वहीं बच्चों को पढ़ाएगी। हाथ में रुपए आ जाने पर पेरिस पढ़ने चली जाएगी। पेरिस यूनिवर्सिटी में वह डाक्टरी पढ़ेगी।

मान्या का नाम बापू ने सरकारी स्कूल में लिखाया। सभी कहते, भाई बड़ी तेज़ लड़की है यह। किसी मामूली स्कूल में डाल देने से इसकी पढ़ाई चौपट हो जाएगी।

इसके अलावा एक बात और थी। जब तक सरकारी स्कूल का सर्टीफिकेट न मिले, विदेश जाने की, किसी यूनिवर्सिटी में भर्ती होने की, या कोई नौकरी करने की, गुंजाइश न थी।

नए सरकारी स्कूल में रूसियों का कड़ा शासन था। क्रिलोव की कहानियों के नाम पर पोलिश भाषा में पोलैण्ड का इतिहास पढ़ने की कोई संभावना थी नहीं! मान्या का मन बहुत बेचैन रहता। स्कूल में भर्ती होने के कुछ ही दिन बाद एक जर्मन अध्यापिका से मान्या की झड़प हो गई। जर्मन अध्यापिका को पोलिश लड़कियों का देश-प्रेम फूटी आंखों न सुहाता वह बराबर इसी कोशिश में रहती कि किसी तरह इन लड़कियों को नीचा दिखाए।

ढाई हाथ की औरत! मुश्किल से मान्या के कंधे तक सिर पहुंचता। लेकिन बाप रे बाप! कितना गुस्सा भरा था उसमें! सभी डरे-डरे, सहमे-सहमे रहते उसके सामने! अगर कोई नहीं डरता था, नहीं घबराता था, तो मान्या और उसकी सहेली काजिया। दोनों लड़कियां कक्षा में सबसे तेज़ थीं! यही दोनों लड़कियां थीं कक्षा की सबसे साहसी लड़कियां।

मान्या और काजिया में खूब पटती। बस, ऐसा समझो जैसे एक प्राण, दो शरीर। छुट्टी होते ही दोनों निकल पड़तीं। दूर, बहुत दूर, दोनों घूमने निकल जातीं। वारसा नगर का चप्पा-चप्पा छान मारतीं। ढूंढ-ढूंढकर नए-नए रास्तों का पता लगातीं। खूब बातें करतीं; तरह-तरह की बातें। तरह-तरह के खेल खेलतीं। खेलने-कूदने, दौड़ने-घूमने और खुली हवा में रहने की आदत मान्या को बचपन से ही थी। खूब स्वस्थ्य और तन्दुरुस्त हो गई थी वह।

एक दिन का बात है।

कहीं जा रही थीं दोनों सहेलियां। राह चलते उनकी मुलाकात हो गई अपनी सहेली कुनिच्का से। अरे यह क्या! क्या हुआ कुनिच्का को? कुनिच्का की ऐसी हालत क्यों? खूब अच्छे-अच्छे कपड़े पहनती है वह तो। खूब सज-संवर कर रहती है। उसकी पागलों जैसी हालत क्यों? अस्त-व्यस्त कपड़े! दोनों आंखें फूल कर लाल!

''क्या हुआ कुनिच्का? क्या हुआ, बताओ तो, बहन!''

कुनिच्का धम् से बैठ गई और रोने लगी। सिसकियां भरते-भरते उसने सब कुछ बताया। कुछ समझ में आया, कुछ नहीं। जासूसों ने उसके भैया को एक षडयंत्र के मामले में फंसा लिया था। फांसी की सज़ा हो गई है उन्हें। कल ही तड़के उन्हें फांसी दी जाएगी।

कुनिच्का को बस इतनी ही खबर थी। वह बेचारी फूट-फूटकर रो रही थी।

मान्या और काजिया सन्नाटे में आ गईं। कुनिच्का को उसके घर ले गईं।

छोटी-छोटी लड़कियां; नन्हा-सा सुकुमार मन! असह्य यंत्रणा से उनका नन्हा मन छटपटा उठा।

कुनिच्का और कुनिच्का की सहेलियों ने रात उसके मकान पर काटी। रात भर सब जागती रहीं।

अब भोर होने को थी। भोर का हल्का प्रकाश सारी दुनिया को धीरे-धीरे सचेत कर रहा था। रात भर जागी, आकाश की ओर टकटकी लगाए बैठी, इन लड़कियों का चेहरा बर्फ़ जैसा हो गया था। तीनों सहेलियों ने एक-दूसरे का हाथ पकड़कर घुटने टेके। घुटने टेक कर पोलैण्ड के इस बहादुर बेटे के नाम पर अपने कोमल, सुकुमार मन की सारी श्रद्धा इन्होंने उंडेल दी।

इसी तरह रोते-हंसते दिन बीत चले। मान्या ने अब सोलहवें वर्ष में पैर रखा।

सन् 1883 । 12 जून को मान्या ने स्कूल की फाइनल परीक्षा पास की। सबसे ज़्यादा नंबर मिले मान्या को। अहा! कितना गर्व हुआ उसके बापू को!

परीक्षा के बाद लंबी छुट्टियां। छुट्टियां बिताकर मान्या फिर वारसा लौटी। छुट्टियां बिताई थीं उसने गांवों में; अपने रिश्तेदारों के घर। वहां उसकी इतनी खातिर हुई, इतना खिलाया-पिलाया गया उसे, इतना .... कि वह और भी मोटी-ताज़ी हो गई।

और सिर्फ मोटी-ताज़ी ही नहीं। हिम्मत भी उसकी चौगुनी हो गई। मीलों घूमना, घंटों तैरना। खेलने-कूदने से शरीर तो स्वस्थ्य हुआ ही, मन भी दृढ़ और मज़बूत हुआ। मान्या ने प्रकृति को नई आंखों से देखना सीखा। नई-नई बातों की खोज में रहने वाला उसका मन प्रकृति के रहस्य को छीन लेने के नए-नए सपने देखता।

लेकिन मान्या थी आखिर एक गुलाम देश की बालिका। ऊपर से बापू के पास पैसा नहीं। मान्या अपने जीवन के लिए कौन-सा मार्ग चुनेगी? कौन-सा मार्ग अपने जीवन के लिए निकालेगी?

मान्या और उसकी दीदी ब्रोन्या ने आखिर एक मार्ग खोज निकाला। कौन-सा मार्ग?

यही कि मान्या भी पेरिस जाएगी। स्वाधीन फ्रान्स में वह भी विज्ञान— वही बापू वाला पदार्थ-विज्ञान—पढ़ेगी।

सो ब्रोन्या की तरह मान्या ने भी बच्चों को पढ़ाना शुरू किया। लेकिन जो पैसा आता खाने-पीने में ही खर्च हो जाता। दोनों बहनें मिलकर भी कुछ जमा न कर

पाईं। उधर दिन-पर-दिन बापू की हालत बिगड़ती जा रही थी। लड़कियों के एक स्कूल में पढ़ाते-पढ़ाते बेचारे बिलकुल थक गए थे। लगता था किसी ने उनका सारा सत्व निकाल लिया है। उनकी अब भला इतनी सामर्थ्य कहां कि लड़कियों को पेरिस भेजें!

मान्या और मान्या के भाई-बहन बापू को बड़ा प्यार करते। यह नहीं कि जैसे मां को प्यार करते थे, वैसे ही। नहीं। बापू के लिए उनका प्यार कुछ और ही ढंग का था। बापू का दिल था बहुत कोमल और दिमाग था एक वैज्ञानिक का। उनका सारा समय गरीबी से जूझने में बीत था। खोज-बीन के लिए, प्रयोग के लिए, बिल्कुल समय न मिलता। तो भी वह बच्चों की ज्ञान की प्यास बुझाने में कुछ उठा न रखते।

शाम को अक्सर सब बच्चे बापू को घेर लेते। बस, एक छोटी-मोटी साहित्यिक गोष्ठी जम जाती। डिकेन्स का नाम सुना है न तुमने? अंग्रेज़ी उपन्यासकार! उन्हीं का लिखा हुआ एक उपन्यास है—'डेविड कॉपरफील्ड'! बच्चों के जीवन पर। मान्या के बापू ने इसी उपन्यास का पोलिश भाषा में अनुवाद किया था। उन्हें सदा इस बात का ध्यान रहता कि बिना मां के बच्चों को किसी तरह की तकलीफ न होने पाए।

अब तुम्हीं बताओ, बापू जब बच्चों पर इस तरह जान देते थे तो बच्चे भला बापू के कहने में क्यों न रहते? वे उनकी हर बात मानते। कभी उनकी कोई बात न टालते। बापू ने उन्हें अन्याय के खिलाफ लड़ने की शिक्षा दी। इस शिक्षा पर चलने में बच्चों ने कभी कोई कसर नहीं उठा रखी।

बापू बड़ी कड़ी इस्पात के आदमी थे! फिर भी, कभी-कभी यकायक उनकी हिम्मत टूट जाती। उनके मन पर निराशा छा जाती। गहरी सांस भरकर वह कहते; ''ओह! तुम लोगों के लिए मैं कुछ नहीं कर पाया। शिक्षा भी मैं तुम्हें क्या दे सका? तुम्हें विदेश भेजने की सामर्थ्य भी मुझ में नहीं। अब मैं बूढ़ा हो चला हूं। डरता हूं, कहीं तुम्हीं लोगों के गले न पड़ूं।''

बापू की बातें सुनकर चारों भाई-बहन बापू को घेर लेते और कहते; ''क्या कहते हो बापू! अब तो हम लोग बड़े हो गए! डरने की क्या बात है?''

मान्या के लिए विश्वविद्यालय का द्वार भले ही बंद हो, ज्ञान का द्वार नहीं बंद हो सकता था। पोलैण्ड के जाने-माने देश-प्रेमी वैज्ञानिकों की कोशिश पैरवी से उस जमाने के सारे आईन-कानूनों को अंगूठा दिखाकर, छिपे-छिपे, एक ''प्रदीप्त विश्वविद्यालय'' चलने लगा।

गुलाम पोलैण्ड में जैसे देश-प्रेम वर्जित था, वैसे ही विज्ञान की चर्चा भी। लेकिन विज्ञान की चर्चा लुक-छिपकर होती रहती। रोज़ शाम को किशोर बालक-बालिकाओं को विज्ञान की शिक्षा दी जाती। उनके मन में देश-प्रेम की लौ जगाई जाती। उन्हें सिखाया जाता; जब भी तुम आम जनता के बीच जाओ, जब भी उसके बीच बैठो-उठो, उसे जगाओ! पुरानी रूढ़ियों को तोड़ो! जनता में नए वैज्ञानिक विश्वास भरो!

मान्या और ब्रोन्या। बड़े उत्साह से दोनों ने विश्वविद्यालय में नाम लिखाया। दोनों ने देश को प्यार करना, विज्ञान को गहराई से जानना, सीखा। विज्ञान और मनुष्य का कल्याण दोनों चीज़ें उनके लिए एक ही थीं।

पर रुपए-पैसे वाली समस्या हल न हुई।

बहुत सोचा-विचारा।

एक दिन मान्या ब्रोन्या से बोली, ''दीदी! इसी रफ्तार से हम लोग चलते रहे, तो पहुंच चुके पेरिस! एक बात मुझे सूझी है, कहो तो कहूं।''

ब्रोन्या बोली, ''कहो।''

''हमारे पास जो भी थोड़ी-बहुत पूंजी है,'' मान्या ने कहा, ''उसे लेकर तुम पेरिस चली जाओ। डाक्टरी पढ़ने में चार साल लगते हैं न? इस बीच मैं क्या करूंगी मालूम है? मैं गांव में किसी बड़े घर में ट्यूशन कर लूंगी। जो कुछ मिलेगा उसमें से थोड़ा तुम्हारे पास भेज दिया करूंगी, थोड़ा अपने लिए बचा रखूंगी।''

ब्रोन्या का हृदय भर आया। आंखों में आंसू छल-छला आए। दोनों हाथ फैला कर बोली, ''पूरी बात तो सुन लो दीदी! मैं इस तरह तीन साल चलाऊंगी। बापू भी तुम्हें कुछ-न-कुछ मदद देते रहेंगे। बस, तीसरे साल मेरे पास पेरिस जाने भर को पैसा हो जाएगा। तब तक तुम्हारे इम्तहान भी खत्म हो जाएंगे। बापू मुझे मदद देंगे ही। तुम भी तो कुछ मदद दोगी न!''

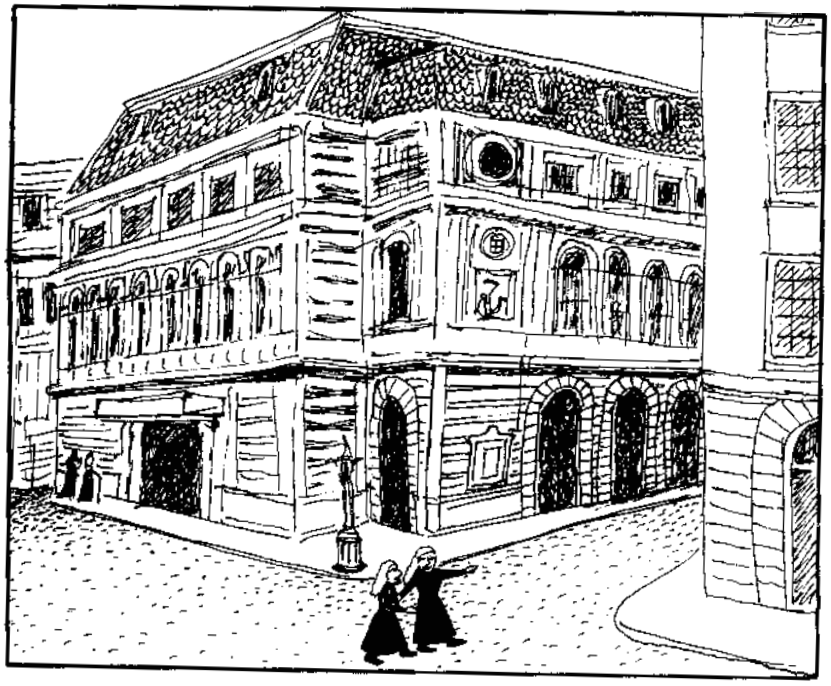

ब्रोन्या तब भी मना करती रही। बोली, ''नहीं, यह कैसे हो सकता है? तू तो मेरी छोटी बहन है।''

अब मान्या बिगड़ उठी, ''तुम भी बिल्कुल पागल हो दीदी! छोटी हूं तभी तो बाद में जाऊंगी। इसके अलावा और हो ही क्या सकता है!''

सो, ब्रोन्या को पेरिस जाने का इंतज़ाम करना ही पड़ा। लड़कियों का विचार जब बापू को मालूम हुआ तो उन्होंने भी उनका उत्साह बढ़ाया।

मान्या जीवन के संघर्ष में कूद पड़ी। उम्र सिर्फ सत्रह साल की। और इसी उम्र में नौकरी की तलाश में इधर-उधर घूमना शुरू कर दिया।

ब्रोन्या पेरिस रवाना हो, इससे पहले मान्या को एक जगह काम मिल गया। एक अपरिचित छोटा-सा गांव। इसी गांव में एक बड़े आदमी के घर लड़कियों को पढ़ाना था। वह वहीं रहेगी। वहीं खाएगी-पिएगी। कपड़े-लत्तों की धुलाई का खर्चा भी वे ही लोग देंगे। ऊपर से, साल में चार सौ रूबल की तनख्वाह।

मान्या फूली न समाई। अपनी छोटी-सी हिसाब की कापी उसने निकाली। जमा-खर्च का पूरा हिसाब लगाया, कितना वह दीदी को देगी और कितना अपने लिए रखेगी!

लो, उसके गांव से जाने का वक्त आ गया। बड़ी उथल-पुथल है उसके मन में। बापू, भैया, दीदी को छोड़कर, जाने-पहचाने घर को छोड़कर, घर के लोगों से दूर—कहां जा रही है मान्या? कहां जा रही है घर की सबसे छोटी बिटिया?

गांव में ज़मींदार साहब का घर वैसा ही निकला जैसा उसे डर था। चौबीसों घंटे मालकिन का पारा गरम। और रहन-सहन? रहन-सहन को देखकर तो मान्या को पूरे अभिजात वर्ग से घृणा हो गई। उन दिनों पोलैण्ड के बड़े आदमी अपने बच्चों को फ्रांसीसी और रूसी छोड़ और कुछ नहीं सिखाते थे। पोलिश भाषा में तो बातचीत भी नहीं करते थे। अपने को जन-साधारण से अलग, ऊंचा, ऊपर उठा हुआ, दिखाना चाहते थे। उन्हें डर था कि कहीं विदेशी शासक उन्हें मामूली आदमी न समझ बैठें।

मान्या ने अपनी सहेली काजिया को लिखा, ''ये लोग बड़े आदमी हैं। बड़े आदमी ऐसे कि पांच-पांच नौकर रख लेते हैं, लेकिन तनख्वाह नहीं देते उन्हें। एक महीने उधार लो, तो भरने में लग जाते हैं छः महीने। एक तरफ तो रोज़ के खर्चे में कटौती, दूसरी तरफ औरों को दिखाने के लिए अंधाधुंध पैसे की बरबादी। फ्रेंच के नाम पर ये लोग बोलते हैं एक अजीब-सी दोगली ज़ुबान। उच्चारण सुनो तो हंसते-हंसते पेट में बल पड़ जाए। लेकिन तब भी बोली जाएगी फ्रेंच ही।''

''बातें ये लोग बड़ी मीठी-मीठी करते हैं। आवाज़ में जैसे शक्कर घुली हो। लेकिन दूसरों की बुराई छोड़ और कोई बात इनके मुंह से नहीं निकलती। यहां आकर आदमी को मैंने और अच्छी तरह पहचानना सीखा। यकीन मानो, उपन्यासों में जो चरित्र हम पढ़ते हैं न, वे सब असली हैं। पैसा आदमी को कितना नीचे गिरा सकता है, यह यहीं आकर मैंने देखा।''

आखिर खीझकर मान्या को काम छोड़ना पड़ा। तो भी, उसे ज़्यादा दिन बेकार नहीं बैठना पड़ा। एक और परिवार में, अच्छी तनख्वाह पर, काम मिल गया। बड़े अच्छे आदमी थे ये लोग। खूब अच्छा घर। दो लड़कियों को पढ़ाती थी मान्या। एक दस साल की— बड़ी लाड़ली, बड़ी दुलारी। दूसरी उसकी बहन, मान्या की उम्र की। उन्हें पढ़ाते सात-सात, आठ-आठ घंटे बीत जाते। समय मिलने पर मान्या वहीं की स्थानीय लाइब्रेरी से पुस्तकें लाती। विज्ञान की पुस्तकें लाती। पुस्तकें पढ़ते-पढ़ते वह उनमें डूब जाती। कभी-कभी उसका मन दुखी होता तो कापी खोलकर बैठ जाती और 'कैलकुलस' के ऊबड़-खाबड़ सवाल हल करने लगती। क्या खूब नुस्खा निकाला था उसने मन को बहलाने का!

लेकिन मान्या को इतने से संतोष न था। मन ही उसका ऐसा बन गया था कि चैन से न बैठ पाती। जब देखो तब काम। हमेशा काम करने को बेचैन। एक दिन उसकी बड़ी शिष्या से उसका सलाह-मशविरा बहुत देर तक चलता रहा। थी भी तो वह उसी की उम्र की। मान्या अपने पुराने विश्वविद्यालय का आदर्श नहीं भूली थी। दोनों ने फैसला किया कि वहां के मिल-मज़दूरों के बच्चों को इकट्ठा करके एक क्लास चलाएंगी। घर की मालकिन अच्छे स्वभाव की थी। उसने इज़ाज़त दे दी। फिर क्या था! ठीक हो गई जगह। मान्या के कमरे के पास ही।

मान्या और उसकी शिष्या—ये थीं नए स्कूल की अध्यापिकाएं।

शाम को घर पर भीड़ लग जाती; फटे-पुराने कपड़ों में लिपटे लड़के-लड़कियों की भीड़। सब इकट्ठा हो जाते। फिर, अटक-अटककर, धीरे-धीरे, एक-एक शब्द ये लोग पढ़ते। मान्या बड़े धीरज से पढ़ाती उन्हें। बड़ा अपनत्व मालूम होता उसे उनके साथ। शाम को जैसे ही उनके नंगे पांवों की चाप उसे सुनाई देती, उसे लगता कि उसका कोई सगा-संबंधी आ रहा है।

1888 में मान्या के बापू ने पुरानी नौकरी से छुट्टी ली। अब एक नई नौकरी कर ली उन्होंने। यह नौकरी बहुत अच्छी तो नहीं थी, लेकिन तनख्वाह अच्छी थी। ब्रोन्या की पढ़ाई का सारा खर्च बापू ने अपने सिर ले लिया। ब्रोन्या ने मान्या से पैसे लेना बंद कर दिया। बापू को लिख दिया, हमारे हिस्से का कुछ पैसा काटकर मान्या के हिस्से में जमा करते जाओ।

ब्रोन्या ने कई परीक्षाएं पास कीं—एक के बाद एक। खूब अच्छे नंबरों से। लेकिन.....

लेकिन क्या?

यह कि मान्या के मन में विदेश जाने की अब पहले जैसी हूक न थी। तीन वर्षों का लगातार संघर्ष। इस संघर्ष के बाद बहुत-सी बातों का मूल्य मान्या ने नये सिरे से आंका। बापू बूढ़े हो चले हैं। मान्या को अब वह अपने पास रखना चाहते हैं। भाई और बहनों की समस्या भी है। सारा बोझ अब उसे अपने कंधों पर लेना होगा।

जोज़फ भैया ने डाक्टरी पास कर ली थी। लेकिन हाय रे पैसे की तंगी! वारसा में अपना दवाखाना भी न खोल सके।

तीसरी बहन हेला के लिए भी मान्या को कम चिंता न थी। वह बड़ी सुन्दर थी। सुन्दर होते हुए भी उसकी सगाई टूट चुकी थी। सगाई टूटी थी इसलिए कि बापू मुंहमांगा दहेज़ न दे सके।

एक दिन ब्रोन्या की चिट्ठी आई।

जल्दी-जल्दी लिखी कुछ लाइनें थीं:

''फौरन चली आ। मैं शादी कर रही हूं। हमारे यहां तू बेखटके रह सकेगी। किराये के रुपयों का किसी तरह इंतज़ाम कर ले और गाड़ी पर बैठकर पेरिस भाग आ।''

ब्रोन्या के ब्याह की बात घर वालों को पहले से मालूम थी। एक जाने-माने क्रान्तिकारी थे ब्रोन्या के होने वाले पति। पेरिस में डाक्टरी पास करने की तैयारी में आज-कल लगे हुए थे। देश-भक्ति के ज़ुर्म में सरकार ने उन्हें साइबेरिया भेज दिया था। साइबेरिया समझते हो न? कालापानी। लेकिन वहां से भागकर वह फिर पेरिस आ पहुंचे थे।

बड़ी उधेड़-बुन में है मान्या। क्या करे, क्या न करे।

आखिर मान्या एक दिन पेरिस जाने वाली गाड़ी पर जा बैठी। मन ही मन वह कह रही थी, ''एक-एक कौड़ी समझ-बूझ कर खर्च करनी होगी, मान्या!''

रेल के तीसरे दर्ज़े में मान्या अपने टूटे बक्से पर बैठी है। यहां बैठी वह ऐसा महसूस कर रही है जैसे गद्दीदार कुर्सी पर बैठी हो। साथ में लोटा-थाली वगैरा भी हैं, छोटी-मोटी गृहस्थी का सरंजाम।

बापू भी उसे स्टेशन तक छोड़ने आए थे। भर्राये गले से मान्या ने कहा, ''घबराना नहीं, बापू! मैंने इम्तहान खत्म किए नहीं कि फौरन चली आऊंगी।''

बूढ़े बापू का गला भर आया। मान्या को छाती से लगाकर रुंधी आवाज़ में बोले, ''रानी बिटिया! जल्दी घर लौट आना। इम्तहान का नतीज़ा अच्छा होना चाहिए। समझी बेटी! बड़ी मेहनत करनी पड़ेगी, हां!''

छिक्..... छिक्..... छुक्..... छुक्.....!

गाड़ी पेरिस की ओर जा रही है। सारबान विश्वविद्यालय! नया जीवन! दूर तक फैला हुआ भविष्य....!

विश्वविद्यालय की दीवार पर एक नोटिस लगा था—

''सारबान के विज्ञान विभाग में नवंबर 1901 से पढ़ाई शुरू होगी!''

इस नोटिस को मान्या एकटक देखती रह जाती। उसका मन न भरता।

सारबान विश्वविद्यालय! पेरिस! मान्या का सपना साकार हुआ। विश्वविद्यालय के रजिस्टर में फ्रांसीसी ढंग से उसका नाम लिखा गया: ''मारी स्क्लोडोव्स्का।''

सारबान विश्वविद्यालय था ब्रोन्या के घर से बहुत दूर। ब्रोन्या का घर मज़दूरों के एक मोहल्ले में था। मारी के बहनोई काशिमिर वहीं डाक्टरी करते थे। ब्रोन्या भी गांव की औरतों की दवा-दारू करती।

मान्या को पाकर भला कौन खुश न होता? ब्रोन्या और काशिमिर की खुशी का ठिकाना न था। और यही बात मारी के लिए भारी मुसीबत की चीज़ बन गई।

कैसी मुसीबत?

काशिमिर मारी को प्रसन्न रखने में कुछ भी न उठा रखना चाहते। नतीज़ा यह कि मारी की पढ़ाई डांवा-डोल हो गई। ब्रोन्या के घर शाम को अपने देश से निर्वासित पोलिश स्त्री-पुरुषों की बैठकें जमतीं। इन बैठकों में मारी की बराबर पुकार होती रहती।

एक बात और थी। दोनों बहनों में बहुत दिन बाद मुलाकात हुई थी न! सो ब्रोन्या मान्या से बातें करती न अघाती। जब देखो तब बातें। बातें खत्म ही न होतीं। मौका पाते ही ब्रोन्या कोई न कोई बात छेड़ देती। अब बातें हो रही हैं, तो उनका कोई अंत ही नहीं।

मारी पहले से ही बहुत पिछड़ी हुई थी। पोलैण्ड में वैज्ञानिक प्रयोग के साधन भला कहां से मिलते? फिर घर से रोज़ इतनी दूर आना-जाना। पैसा भी खर्च होता, वक्त भी। मारी ने सोचा। सोच-विचार कर फैसला किया। कालेज के पास ही किराये पर एक कमरा ठीक किया। बड़ी मेहनत करनी पड़ी उसे काशिमिर और ब्रोन्या को यह समझाने में कि उसका कालेज के पास रहना ज़रूरी है। ब्रोन्या ने पहले तो ना-नू की। लेकिन हारकर मारी की बात उसे माननी ही पड़ी।

पेरिस में था क्यार्ते ल्यातां नाम का एक मोहल्ला। इस मोहल्ले में रहा करते थे पेरिस के गरीब कलाकार और विद्यार्थी। वहीं था एक मकान। उस मकान की छठी मंज़िल पर थी एक छोटी-सी बरसाती—बिना हवा की, बिना रोशनी की, सीलन भरी बरसाती। यहीं रहने लगी मान्या। फिर, मारी इतने लजीले स्वभाव की थी कि किसी से सहज मिलती-जुलती भी न थी। कालेज में, काम के दौरान में जिनके

साथ उसका सम्पर्क होता, उनके साथ कालेज से बाहर उसका कोई सम्पर्क न था। मारी का तो हर क्षण कीमती था।

यहीं मारी दिन बिताने लगी—एकाग्र साधना में डूबी हुई, पढ़ने-लिखने में व्यस्त।

मारी को अध्ययन में बहुत आनंद आता। खासकर प्रोफेसर पॉल आपेल के भाषणों में। प्रोफेसर आपेल के भाषण सुनती वह कभी न थकती, कभी न अघाती।

ग्रह! उपग्रह! नक्षत्र! हज़ारों-लाखों-करोड़ों मीलों की दूरियां! प्रोफेसर आपेल इनके संबंध में कुछ इस विधि से बताते मानो जादू का तमाशा दिखा रहे हों।

वह कहते, ''लो, देखो! मैं सूरज को हाथ में लेकर नचाता हूं.....!''

भौहों के नीचे दबी मारी की आंखें चमक उठती! वाह री निराली दुनिया! मधुर संगीत के स्वर में बंधा हुआ यह अनोखा विश्व!..... 'मैं सूरज को हाथ में लेकर नचाता हूं!'

परीक्षा ज्यों-ज्यों नज़दीक आती, मारी अधिकाधिक खोई-खोई दिखाई देती। खाने-पीने तक की सुध न रहती। घर को गरम रखने के लिए आग जलाना भी अक्सर भूल जाती। लिखते-लिखते ठंड से उंगलियां सिकुड़ जातीं तब कहीं ध्यान आता कि आज कोयला लाना भूल गई थी। जब बहुत भूख लगती तो पोलैण्ड से अपने साथ लाया स्पिरिट-लैम्प जलाकर एक प्याला चाय गरम कर लेती। यही उसका उस दिन का भोजन होता। खाना बनाने में तो आखिर समय लगता है न! सो मारी को खाना बनाना भी अखरता। काशिमिर और ब्रोन्या के मित्र अक्सर मारी की खिल्ली उड़ाते, ''सुना भाई? हमारी मारी स्क्लोडोव्स्का तो शोरबा पकाना तक नहीं जानती।''

लेकिन कितने दिन चलता इस तरह? धीरे-धीरे मारी का शरीर निढाल हो चला। एक-आध बार तो वह बेहोश तक हो गई। लेकिन, वह कमज़ोर क्यों होती जाती है, क्यों बेहोश हो जाती है, इसका रहस्य उसकी समझ में न आया। निदान जो होना था वही हुआ। एक दिन उसकी शक्ति ने जवाब दे दिया।

एक दिन की बात है।

कालिज की अपनी एक सहेली के सामने ही मारी बेहोश हो गई। सहेली बेचारी घबड़ा गई। भागी-भागी काशिमिर और ब्रोन्या के घर पहुंची। काशिमिर भी काम-धाम छोड़कर भागे और छः-तल्ले वाले मकान में पहुंचे। कमरे में घुसते ही उन्होंने सतर्कता से चारों ओर देखा।

यह क्या? मान्या खाना पकाती है, इसका कोई चिन्ह नहीं! कड़े स्वर में उन्होंने पूछा, ''मारी! तुमने क्या खाना खाया है आज?''

''आज? याद नहीं पड़ता। हां, खाया तो है कुछ देर पहले।''

''मैं पूछता हूं क्या खाया है?''

''खाया है... यही... कुछ फल और... और बहुत कुछ...।''

अब काशिमिर का क्रोध उबल पड़ा। आव देखा न ताव, तुरंत गाड़ी की, और ले गए मारी को अपने घर। ब्रोन्या अपनी बहन की सेवा में तन-मन से जुट गई। देखते ही देखते मारी के चेहरे की स्वाभाविक लाली लौट आई। स्वस्थ होकर मारी ने विदा मांगी। लेकिन वे लोग क्यों मानने लगे? आखिर मारी ने बार-बार विश्वास दिलाया कि वह अपने शरीर की पूरे जतन से देख-भाल करेगी। तभी ब्रोन्या ने उसे वहां से हटने की इज़ाज़त दी।

अब आ पहुंचे नतीज़े के दिन। बड़ी बेसब्री से कटे ये दिन। और...

एक दिन मारी यूनिवर्सिटी पहुंची। उसे मालूम हुआ कि वह प्रथम उत्तीर्ण हुई है। सब के सब अचम्भे में आ गए।

बापू की दुलारी मान्या, फिर बापू के पास लौट चली।

लौटकर घर पहुंची तो मान्या ने देखा कि घर की हालत बहुत खराब है। उसका दिल बैठ गया। ऊंची शिक्षा के लिए दुबारा पेरिस जाने की कोई संभावना न दिखाई देती। लेकिन इस बार भी पिछली बार की तरह उसे एक अच्छा मौका मिल गया। एक धनी पोलिश महिला थीं। वह मान्या को बहुत मानती थीं। कोशिश करके उन्होंने उसे ''अलेक्जान्द्रोविच स्कॉलरशिप'' दिला दिया।

अब मारी दुगने उत्साह से पेरिस लौटी। हालांकि, उसकी आर्थिक दशा इस बार पिछली बार से भी ज़्यादा खराब थी। चादर का एक कोना खींचती, तो दूसरा हट जाता। खर्चा किसी तरह पूरा न पड़ता। उसका एक बहुत पुराना साथी था : जूता। उससे भी अब बिछोह के दिन आ गए थे। घिसटते-घिसटते बेचारे ने मुंह फैला दिया था। अब तो नया जूता खरीदना होगा। दूसरा कोई चारा नहीं। उसने नया जूता खरीदा तो हाथ की रही-सही पूंजी भी गायब। घर में आग जलाने तक

को पैसा नहीं। कमरा इस बार भी छठे-तल्ले पर ही लिया था। छठे-तल्ले का कमरा, कड़ाके की सर्दी। सर्दी में घर हो जाता जैसे बर्फ। पढ़ते-पढ़ते दांत किट-किट-किट-किट बोलने लगते। ठंड के मारे रात में पलक न लगती। सर्दी हड्डियों को काटे देती थी।

दो बरस तक किसी तरह जोड़-जोड़कर बचाए दो कपड़ों में मारी ने दिन काटे थे। इन कपड़ों का रंग तक उड़ चला था अब। गर्म कोट तार-तार हो रहा था, मानो बिल्कुल जवाब दे बैठने की धमकी दे रहा हो।

मारी रात को अपना ट्रंक खोलती। वही टूटा-फूटा ट्रंक। ट्रंक से वह निकालती कपड़े-लत्ते। इन्हीं कपड़ों को बदन से लपेट कर सो जाती। लेकिन सर्दी? कम्बख्त सर्दी तब भी हटने का नाम न लेती। अब तो मारी एक कुर्सी खींचती और उसे भी उलटकर अपने ऊपर डाल लेती और आंखें बंद करके सोने की कोशिश करती। उधर, पानी के बर्तन में बर्फ की मोटी तह जम जाती।

ऐसी थी मारी। अपनी तरफ से एकदम बेखबर। काम की धुन में बिल्कुल दीवानी।

सो, मारी एक अध्यापक के मन को भा गई। अध्यापक महोदय का नाम था पियरे क्यूरी। थे तो वह अभी तरुण ही, लेकिन बड़े प्रतिभाशाली वैज्ञानिक थे। मारी को उन्होंने छात्रा के रूप में देखा था। उन्हें मारी में असाधारण योग्यता दिखी थी। मारी को उन्होंने अपनी जीवन-संगिनी बनाना चाहा। उन्होंने सोचा, हम दोनों मिलकर सारा जीवन विज्ञान की साधना में लगा देंगे। एक दिन उन्होंने मारी के सामने विवाह का प्रस्ताव रख ही दिया।

मारी बड़े असमंजस में है, क्या करे, क्या न करे। पियरे क्यूरी हैं फ्रांसवासी। उनसे विवाह करने का मतलब यह है कि सारा जीवन फ्रांस में बिताना होगा। भला मारी कैसे हमेशा के लिए अपने देश को छोड़ सकती थी? मारी ने आपत्ति की, ''पोलैण्ड निवासियों को अपना देश छोड़ने का अधिकार नहीं है।'' पियरे ने उत्तर दिया, ''अच्छी बात है! चलो, मैं ही फ्रांस छोड़ दूंगा।''

अब तो मारी और भी संकट में। पियरे क्यूरी जैसे वैज्ञानिक पोलैण्ड जाएंगे तो गुलाम पोलैण्ड में करेंगे क्या? बहुत हुआ तो मास्टरी कर लेंगे। यही न! पोलैण्ड में वैज्ञानिक खोज करने की भी तो कोई सुविधा न थी। मास्टरी के अलावा जीविका का दूसरा कोई साधन पोलैण्ड में हो नहीं सकता था। अंत में मारी के भाई-बहनों ने सलाह दी कि वह विवाह कर ले और फ्रांस में ही रहे।

पियरे के पिता थे डाक्टर। बड़े उदार, बड़े शिष्ट। पियरे की माताजी भी बड़ी तेजस्वी थीं। जितनी तेजस्वी थीं, उतनी ही साहसी भी। सामाजिक रूढ़ियों, सड़े-गले संस्कारों के पीछे आंखें मूंदकर चलने वाले न थे ये लोग।

अपने बेटों को भी उन्होंने आज़ादी से जीवन बिताना सिखाया था।

पियरे का भाई था जैक। पियरे और जैक दोनों में असाधारण प्रतिभा थी। बचपन से ही दोनों वैज्ञानिक खोज और प्रयोगों में बहुत आगे बढ़ गए थे। पियरे ने सोलह वर्ष की उम्र में ही बी.एस-सी. की परीक्षा पास कर ली थी, वह भी सम्मान के साथ। इतना ही नहीं! अन्वेषण के क्षेत्र में नए-नए अन्वेषण करके, नई-नई खोजें करके, दोनों भाईयों ने सबको आश्चर्य में डाल दिया था। लेकिन विश्वविद्यालय के अधिकारियों ने उनकी खोजों को जो पुरस्कार दिया वह सिर्फ यह कि उनकी पीठ ठोंक दी। बस!

अठारह वर्ष की उम्र। इसी उम्र में पियरे ने एम.एस-सी. की परीक्षा पास कर ली। उन्नीसवें वर्ष में वह प्रयोगशाला में सहायक के पद पर नियुक्त हो गए। जैक को या उन्हें इसके अलावा न तो कोई पुरस्कार मिला, न उपाधि। उल्टे, दोनों भाईयों को अलग करने का इंतज़ाम कर दिया गया। जैक को एक कालेज में अध्यापक होकर चले जाना पड़ा। पियरे को ''स्कूल ऑफ फिज़िक्स एंड केमिस्ट्री'' में पढ़ाने का काम मिला।

अब तक एक साल बीत चुका था। बहुत उधेड़बुन के बाद मारी पियरे के साथ विवाह करने को राज़ी हो गई। बहुत से लोगों ने तो उसके विवाह की आशा ही छोड़ दी थी। अपनी धुन की पक्की लड़की! एक लीक पर चलने वाली! अपने देश पर जान देने वाली! वह शादी करेगी पियरे से और रहेगी फ्रांस में?

आखिर एक दिन नाते-रिश्तेदारों, सगे-संबंधियों, घनिष्ट मित्रों की शुभ कामनाओं सहित मारी स्कलोडोव्स्का मादाम क्यूरी बन गई। पियरे और मारी का यह संयोग, विज्ञान के क्षेत्र में सचमुच एक ऐतिहासिक घटना है।

अब उन्होंने गृहस्थी जमाई। दोनों ही काम के पीछे दीवाने थे। छोटी-मोटी घरेलू बातों में कीमती समय बरबाद न हो, इसका उन्होंने पूरा बंदोबस्त कर लिया था। फिर भी, मामूली मध्यवर्गी परिवारों की तरह इन दोनों को भी परेशानियों में उलझना ही पड़ता, परेशानियों से पूरी तरह मुक्ति न मिल पाती। हिसाब-किताब रखना, बाज़ार-हाट करना, नाश्ता-खाना बनाना, कपड़े-लत्ते धोना... सब कुछ उन्हें ही तो करना था। मारी स्क्लोडोव्स्का तो शोरबा बनाना तक न जानती थी। लेकिन, मादाम

क्यूरी को तरह-तरह के पकवान बनाने सीखने पड़े। पाक्विद्या सीख ही तो ली मादाम क्यूरी ने वह ऐसी तरकारियां बनाती जिन्हें पकाने में समय तो कम लगता लेकिन ज़ायका होता बढ़िया।

पर, जिनके लिए वह यह सब करतीं उन पियरे महोदय को इसका ध्यान भी न रहता कि वह क्या खा रहा हैं, क्या नहीं। एक बार एक भले घर की महिला ने पियरे साहब को एक मिठाई बनाकर खिलाई। पियरे किसी ध्यान में डूबे मिठाई और खाना खाते रहे। खाना खत्म कर चुकने पर भी मिठाई के बारे में उन्होंने कुछ नहीं कहा। सो, उन महिला से अब और सब्र न किया गया। पूछ बैठीं, ''कैसी लगी आपको?''

''क्या?''

''मिठाई, और क्या?''

''ओह! मैं मिठाई खा रहा था!'' ताज्जुब से पियरे ने उस महिला की ओर देखा। महिला भौंचक्की रह गई। क्या कहे, क्या न कहे, समझ में न आया।

मौका मिलने पर मारी पियरे के साथ ससुराल भी रह आती। काम की धुन वहां भी पियरे का साथ न छोड़ती। वहां उनके लिए दो अलग-अलग कमरे ठीक कर दिए गए थे।

नाटक-थियेटर जाने का मौका भी उन्हें मुश्किल से मिलता। वारसा में मारी की छोटी बहन हेला की शादी हुई। लेकिन काम का दबाव इतना था कि पियरे उसमें शामिल न हो सके।

विश्वविद्यालय की परीक्षा में इस बार भी मारी प्रथम आई। बहुत दिनों के बाद अब दोनों ने साइकिल पर झोला टांगा और बड़े उत्साह से पहाड़ पर छुट्टियां बिताने चल पड़े।

सन् 1897। मारी की गोद में पहली संतान आई। मोटी-सलोनी लड़की! मां की गोद उजागर करने वाली! नाम रखा गया इरीन!

इरीन के कारण मारी को शुरू-शुरू में काफ़ी तकलीफ़ उठानी पड़ी। उसे नहलाना-धुलाना, खिलाना-पिलाना, सुलाना और फिर खाना बनाकर, बाज़ार होकर प्रयोगशाला जाना। जैसा कि स्वाभाविक था, कठोर परिश्रम से मारी का स्वास्थ्य गिरने लगा। इरीन की देख-भाल के लिए दाई रखनी पड़ी। उधर इरीन

के बाबा भी तो थे। इरीन के पैदा होने के थोड़े दिनों बाद ही पियरे की मां की मृत्यु हो गई। पियरे के पिता, डाक्टर क्यूरी, अब बेटे और बहु के साथ ही रहते। इरीन उनसे बहुत हिल गई थी। मारी को इससे लाभ ही हुआ। वह बेटी को बाबा के हाथों सौंपकर, निश्चिन्त होकर, प्रयोगशाला में काम कर सकती थी।

इरीन क्यूरी ने बड़ी होकर माता-पिता के यश में चार-चांद लगाए। मारी क्यूरी की तरह उसकी गिनती भी संसार के प्रसिद्ध वैज्ञानिकों में हुई। इरीन और उसके पति जोलियो क्यूरी ने पदार्थ विज्ञान में नोबल पुरस्कार पाया और विज्ञान को समाज के कल्याण में लगाने के लिए जी-जान से काम किया।

अदृश्य किरण

इरीन के जन्म से पहले ही मारी सारबान विश्वविद्यालय की परीक्षा समाप्त कर, डाक्टरेट की डिग्री लेने की बात सोच रही थी। वह चाहती थी कि वैज्ञानिक खोज-बीन के लिए कोई एकदम नया विषय चुने। वैज्ञानिकों के पिछले दिनों प्रकाशित लेखों की छान-बीन में वह लगी रहती।

डाक्टरेट की डिग्री प्राप्त करना कोई आसान काम नहीं था! इसके लिए ज़रूरी था कि किसी ऐसी चीज़ का पता लगाया जाए जिसकी पहले किसी को टोह न मिली हो, या किसी ऐसी गुत्थी को सुलझाया जाए, जिसका अभी तक कोई हल न निकला हो।

मारी जिस प्रयोगशाला में काम करती थीं, उसके अध्यक्ष थे पियरे क्यूरी। सो, खोज-बीन का विषय चुनने में मारी को सबसे अधिक सहायता मिली पियरे से ही।

यह तो तुम जानते ही हो कि पियरे फ्रांस के एक बड़े वैज्ञानिक थे। पदार्थ-विज्ञान में उनके ज्ञान और अनुभव की थाह नहीं थी।

मारी और पियरे दोनों बातें किया करते....।

क्या बातें किया करते?

यही कि ऐसी कौन-सी चीज़ें हैं, जिनके बारे में आदमी को आज तक कुछ नहीं मालूम? किसी ऐसी चीज़ का भेद पाना होगा, जो न सिर्फ आदमी की जानकारी बढ़ाए बल्कि उसके काम भी आए।

वैज्ञानिक क्षेत्र में उन दिनों रोज़ नए-नए आविष्कार हो रहे थे। इन आविष्कारों को लेकर वैज्ञानिक दीवाने हो रहे थे।

बहुत खोज-बीन के बाद वैज्ञानिकों ने घोषणा की थी कि संसार में कुल मूल-

तत्व 92 हैं। ये मूल-तत्व ऐसे होते हैं कि चाहे जितना बांटों-काटो, बारीक से बारीक भागों में विभाजित करो, उनकी प्रकृति, उनका मौलिक गुण, नहीं बदलता।

मादाम क्यूरी ने डाक्टरेट की डिग्री के लिए जो विषय चुना, और जो खोज उन्होंने की, उससे वैज्ञानिक जनता में बड़ी हलचल मची। उन्होंने सिद्ध कर दिया कि ऊपर बताए मूल-तत्वों के अलावा और भी मूल-तत्व हैं। इनके बारे में अभी तक किसी को कुछ मालूम नहीं था। इन्हीं दिनों हेनरी बेकरेल नामक पेरिस के एक अध्यापक ने रंटजन किरण के बारे में लेख लिखा। उन्होंने एक नई किरण का पता लगाया था। इस किरण का नाम रखा गया 'एक्स-रे'। 'एक्स-रे' का दूसरा नाम रंटजन किरण भी है। इसकी विशेषता यह है कि डाक्टर लोग इसकी मदद से मानव शरीर के रक्त-मांस को भेदकर चमड़े के नीचे की हड्डियों का भेद जान लेते हैं।

जैसा कि स्वाभाविक था, इस किरण के बारे में वैज्ञानिकों ने बड़ा उत्साह दिखाया। इसी किरण के बारे में खोज करते-करते बेकरेल को एक दिन पता चला कि यूरेनियम नाम की धातु से भी एक प्रकार की अदृश्य किरण निकलती है।

कैसी अद्‌भुत किरण है यह! मारी तो मुग्ध हो गई। बेकरेल की खोज के बारे में पियरे और मारी में बड़ी गंभीर बातें हुआ करतीं। बेकरेल अभी तक केवल इतना ही कह पाए थे कि इस तरह की किरण मौज़ूद है। अब यह पता लगाना कि वास्तव में यह चीज़ क्या है, मारी का काम था। अंत में फैसला हुआ कि इस किरण के बारे में खोज-बीन को ही मारी डाक्टरेट की डिग्री का विषय चुने।

लेकिन कठिनाइयां! कठिनाइयां बहुत-सी थीं। सबसे बड़ी कठिनाई यही थी कि इस विषय पर पुस्तकें नहीं थीं। न ही इस विषय को कोई अध्यापक पढ़ाता था। बेकरेल महोदय केवल इतनी मदद कर सकते थे कि कह दें, 'हां, इस तरह की किरण मौज़ूद है।' इस विषय पर खोज-बीन के लिए प्रयोगशाला चाहिए थी; साज-सामान चाहिए था। ....यह सब कौन जुटाएगा?

बहुत कोशिश-पैरवी और पदार्थ-विज्ञान विभाग के अधिकारियों से विनय-प्रार्थना करने के बाद मारी के लिए विश्वविद्यालय की निचली मंज़िल में एक सीलन भरा कमरा मिला। कमरा क्या था, फालतू गोदाम समझो उसे! दिमाग ठिकाने रखना और काम करना—दोनों बातें बहुत कठिन थीं यहां। गर्मी में उमस और पसीने से बुरा हाल। जाड़ों में ठंड; प्रयोग के सूक्ष्म औज़ार काम न करें। लेकिन यहां कोई मारी की तपस्या में विघ्न डालने वाला नहीं था। एकचित्त होकर अपने औज़ार से वह यूरेनियम के कण-कण की जांच करती। यह औज़ार किसी और ने नहीं, स्वयं पियरे क्यूरी ने उसके लिए तैयार किया था।

औज़ार बहुत पेचीदा न थे। अदृश्य किरण का एक विशेष गुण वैज्ञानिकों को खास महत्व का लगा। यों तो किसी गैस या हवा के भीतर से बिजली नहीं दौड़ सकती, लेकिन दौड़ भी सकती है— अगर उसमें अदृश्य किरण पड़ जाएं।

तुम्हें पियरे वाले औज़ार के बारे में कुछ बता दूं?

इस औज़ार में धातु की दो पत्तियां थोड़े से फासले पर बैठाई गई थीं। इन पत्तियों के बीच ज़रा-सी यूरेनियम रखने की देर होती कि दोनों पत्तियों के बीच से, हवा के भीतर से, बिजली दौड़ने लगती। क्यों होता ऐसा? बस, यूरेनियम से निकलने वाली उसी अदृश्य किरण के कारण। कितनी बिजली दौड़ रही है, इसका भेद भी बिजली मापने के यंत्र से मालूम हो जाता। बिजली के प्रवाह को मापकर अनुमान लगाया जा सकता था कि यह अदृश्य किरण कितनी शक्तिशाली है।

मारी सोचने लगी....

क्या?

वह सोचने लगी कि यूरेनियम के सिवा और किसी धातु से भी इस तरह की किरण निकलती है या नहीं। सो, उसने फैसला किया।

फैसला यह कि संसार के सभी जाने-पहचाने तत्वों को जांचकर देखेगी कि किसी और से ऐसी किरण निकलती है या नहीं।

कितनी हिम्मत का काम था! सोच कर ही ताज्जुब होता है।

घर-गृहस्थी, पति, ससुर, बेटी! सभी से मारी को अगाध प्रेम था। मारी ने कभी अपने कर्तव्य में लापरवाही नहीं की थी। और अब एक अज्ञात किरण को पकड़ने की उत्सुकता से उसके चेहरे पर नई चमक, आंखों में नई रोशनी, आ गई थी।

जितनी धातुओं का अब तक पता था, सभी को मारी ने जांच कर देखा। पता चला कि थोरियम नाम की जो धातु है, उससे भी इसी तरह की अदृश्य किरण निकलती है। किसी धातु से अदृश्य किरण निकलने के गुण का नाम उन्होंने रखा— रेडियो-ऐक्टिविटी।

लेकिन यह रेडियो-ऐक्टिविटी दो ही धातुओं में क्यों? मारी की उत्सुकता का ठिकाना न था। एक पल वह शांत न बैठ सकी। सीधी म्यूज़ियम पहुंची। जितने भी खनिज पदार्थ वहां थे, सब की परीक्षा करके वह देखेगी।

इन खनिज-पदार्थों में से बहुतों के गुण-अवगुणों का पता वैज्ञानिक लोग पहले ही लगा चुके थे। मारी को अब केवल उन्हीं पदार्थों की परीक्षा करनी थी जिनके रेडियो-ऐक्टिव होने की संभावना थी। 'संभावना वाले' ऐसे ही एक पदार्थ को चुनकर मारी ने उसमें से यूरेनियम और थोरियम धातुओं को अलग किया और उनकी परीक्षा की। अलग-अलग परीक्षा के बाद उसने शेष पदार्थ की परीक्षा की।

मारी आश्चर्य से हक्की-बक्की रह गई। उसने बार-बार परीक्षा की। कम से कम बीस बार परीक्षा की। बड़े अचरज की बात है! यूरेनियम और थोरियम में जितनी है उससे कहीं ज़्यादा रेडियो-ऐक्टिविटी इस पदार्थ में है।

तब?

तब मारी ने सोचा कि ज़रूर कोई चीज़ ऐसी है जो यूरेनियम और थोरियम से भी ज़्यादा शक्तिशाली है और यह रेडियो-ऐक्टिविटी उसी के कारण है।

यह बात है 1898 की। मारी ने एक वैज्ञानिक लेख लिखा। लेख में उसने घोषणा की कि पिचब्लेंड और चारकोलाइट खनिज-पदार्थों में यूरेनियम और थोरियम से अधिक—हां कई गुनी अधिक—रेडियो-ऐक्टिविटी है। पता चलता है कि इन खनिज पदार्थों में, थोड़ी मात्रा में ही सही, कोई ऐसी चीज़ ज़रूर है जो बहुत शक्तिशाली है और जिस पर वैज्ञानिकों की अब तक नज़र नहीं पड़ी।

अब तो अपना खोज-बीन का काम छोड़ पियरे भी मारी के काम में हाथ बंटाने लगे। मारी का काम था भी तो बहुत महत्व का। मारी और पियरे की मिली-जुली ताकत इस अनजानी चीज़ का पता लगाने में जुट गई।

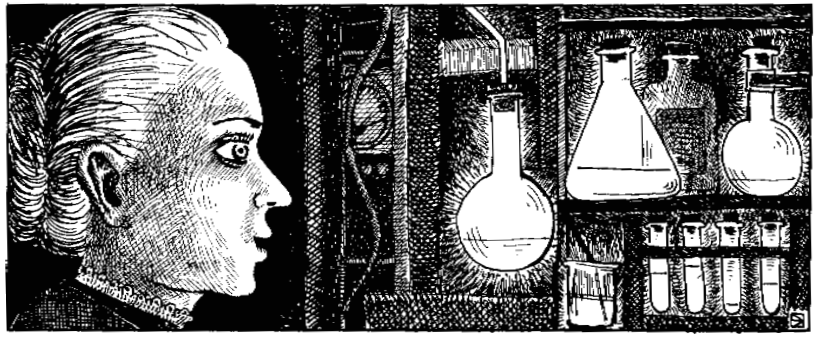

मारी की इन दिनों की डायरी को देखकर बड़ा अचरज होता है। उसमें एक ओर जहां विज्ञान की चर्चा है, वहां घरेलू जीवन की छोटी-मोटी समस्याओं, मामूली सुख-दुख की भी चर्चा है। मारी की प्रयोगशाला थी एक गोदाम में। इस गोदाम का तापमान घटते-घटते शून्य के निकट पहुंच जाता तो मारी मानो ठंड का मज़ाक बनाती हुई, तापमान दर्ज़ कर, उसके आगे दस विस्मयसूचक चिन्ह बना देती। इरीन की उसके पास एक अलग डायरी थी। बिटिया की सभी बातें इस डायरी में लिखी जातीं।

लो, दो-एक जगह से पढ़कर तुम्हें सुना ही दूं। एक जगह लिखा है: ''इरीन हाथ उठाकर 'थैंक यू' कहना सीख गई है। घुटनों के बल खूब दौड़ती है। तुतला-तुतलाकर बोलती है।'' .....आगे की एक तारीख में लिखा है: ''नीचे की कतार में बाईं ओर इरीन का सातवां दांत निकल आया है। एक-आध मिनट को अब खड़ी भी होती है।'' ...बीच-बीच में इरीन का वज़न भी लिखा है। एक जगह मारी ने लिखा है, ''आठ पौंड फलों में आठ पौंड चीनी दस मिनट उबालने के बाद पतले कपड़े से छान ली। चौदह बोतल बढ़िया काली जेली तैयार करके रख दी है।''

इन छोटे-मोटे घरेलू कामों के साथ ही खोज-बीन का काम भी होता।

एक रासायनिक विधि से पिचब्लेंड के अलग-अलग भाग करके हर भाग की रेडियो-ऐक्टिविटी को उन्होंने अलग-अलग नापा। किसी भाग में बहुत ज़्यादा रेडियो-ऐक्टिविटी मिली, किसी भाग में बिल्कुल नदारत। अब रेडियो-ऐक्टिव भाग को रासायनिक विधि से और भी छोटे-छोटे टुकड़ों में बांटा गया। पहले की तरह हर टुकड़े की फिर अलग-अलग परीक्षा की गई। इस तरह उन्होंने पिचब्लेंड के रेडियो-ऐक्टिव अंश धीरे-धीरे अलग करना शुरू किया। कुछ दिनों तक परीक्षा करने के बाद पता चला कि दो अलग-अलग भागों में रेडियो-ऐक्टिविटी पाई जाती है।

1898 का जुलाई महीना। एक भाग शोध-कर आखिर उस रेडियो-ऐक्टिव तत्व को अलग कर ही लिया गया।

''क्या नाम होगा इस 'नवजात शिशु', यानी इस शोधे हुए तत्व का?'' पियरे ने मारी से पूछा।

हां! क्या नाम होगा? मारी सोच में पड़ गई। बहुत सोचा उसने। अपने देश के बारे में सोचा। गुलाम पोलैण्ड के बारे में सोचा। वह सोचती रही, सोचती रही। सोच चुकने के बाद पियरे के कान के पास मुंह ले जाकर धीरे से बोली, ''इसका नाम होगा—पोलोनियम!''

उस साल के दिसंबर महीने तक उन्हें यह भी पता चल गया कि एक बहुत शक्तिशाली, बहुत रेडियो-ऐक्टिव पदार्थ मौज़ूद है, हालांकि अभी तक वे उसे अलग नहीं कर पाए। इसका नाम उन्होंने रखा—''रेडियम''।

इस अजनबी का नाम तो उन्होंने रख लिया। लेकिन कैसा है उसका चेहरा-मोहरा, कैसा है उसका रूप-रंग, यह कुछ पता न था। वैज्ञानिकों ने कहा, ''जब तक आंख से उसे देखें नहीं, हाथ से परखें नहीं, तब तक क्या मालूम कि वह है भी या नहीं।''

पियरे और मारी ने अपने कार्य को अब और आगे बढ़ाया। शोध-कार्य के लिए जितने पिचब्लेंड की—रेडियम निकालने के लिए—ज़रूरत थी, उतना खरीद पाना

उनके बस की बात नहीं थी। यहां तो जैसे-तैसे गृहस्थी खींची जा रही थी। खर्च इधर बढ़ाओ तो उधर तंगी, और उधर बढ़ाओ तो इधर तंगी। किसी तरह खर्चा पूरा पड़ता ही न था। पिचब्लेंड खरीदें तो कैसे?

आखिर उन्हें एक बात सूझी। उन्होंने तय किया कि बोहेमिया के एक कारखाने से, जहां पिचब्लेंड का प्रयोग किया जाता था, प्रयोग किया हुआ पिचब्लेंड खरीद लेंगे। कारखाने वाले करते यह थे कि कांच बनाने के लिए पिचब्लेंड से यूरेनियम निकालकर फिर उसे फेंक देते थे। सो, जब कारखाने वालों ने सुना तो कहा कि गाड़ी का खर्चा देकर यह फेंका-फिकाया सामान जितना चाहो उठा ले जाओ। बेशक, गाड़ी का किराया ज़रूर देना होगा। लेकिन गाड़ी का किराया भी तो कम न था!

दिन बदले हफ्तों में, हफ्ते बदले महीनों में, महीने बदले वर्षों में।

लोहे के बड़े-बड़े कड़ाहे। इन कड़ाहों में मारी उबालती पिचब्लेंड। एक बड़ी लाठी से चला-चलाकर शुद्ध करती उसे। मारी और पियरे दोनों एक-से-एक नए प्रयोग करते। काम की धुन में नहाने-धोने, खाने-पीने की भी सुध न रहती। दोनों की आंखों में एक सपना समाया हुआ था।

एक दिन पियरे कह ही तो बैठे, ''मुझे आशा है कि उसका रूप-रंग बहुत सुंदर होगा।''

सन् 1900 में फ्रांस के रसायन-विज्ञान शास्त्री आन्द्रे देवियर्न भी मारी और पियरे की मदद के लिए आ पहुंचे। उन्होंने समान जाति के एक और पदार्थ की सूचना दी। पोलोनियम और रेडियम को आंखों से देखने के पहले ही, देवियर्न ने 'एक्टिनियम' को खोज निकाला था।

रेडियम का आविष्कार

सन् 1902। मारी और पियरे को काम करते पूरे तीन साल नौ महीने हो चुके हैं।

आखिर एक दिन दोनों ने पीचब्लेंड के शुद्ध किए अंश में कुछ चमकते कण देखे। आसमान में जैसे तारे चमकते हैं न, वैसे ही। अपने पूरे सौन्दर्य सहित रेडियम मानव की पकड़ में आ गया था। मारी और पियरे ने मापकर देखा। उसका परमाणु भार 226 था।

अब तो पूरे वैज्ञानिक जगत ने पियरे और मारी के सम्मान में सिर झुका दिया।

रेडियम के आविष्कार से वैज्ञानिकों को ऐसी अजीब-अजीब बातें मालूम हुईं कि उन्हें तुम विज्ञान का जादू भी कह सकते हो। उन्हें मालूम हुआ कि रेडियम और दूसरे जिन रेडियो-ऐक्टिव मूल तत्वों का पता लगा है, उनका एक और भी गुण है। गुण यह कि अपने भीतर से तेज़ बिखेरते-बिखेरते वे दूसरे तत्वों में बदल जाते हैं। इससे पहले वैज्ञानिक समझते थे कि मूल तत्व सदा एक जैसे रहते हैं; कभी किसी तरह बदलते नहीं। लेकिन रेडियम ने उनकी इस धारणा को बदल दिया।

रासायन-विज्ञान के इतिहास में रेडियम के आविष्कार का बहुत भारी महत्व था। मूल तत्व के गठन को जांचते-जांचते मालूम हुआ कि उसके केंद्र में दो तरह के कण जुड़े होते हैं। एक होता है न्यूट्रोन और दूसरा प्रोटोन। रेडियम के केंद्र में बहुत सारे न्यूट्रोन और प्रोटोन होते हैं। बाद में क्यूरी और दूसरे वैज्ञानिकों की खोजों से मालूम हुआ कि रेडियम और दूसरे भारी पदार्थों के केंद्र में इतने कणों के होने से उनमें अस्थिरता आ जाती है। परिणाम यह होता है कि ज़रा-ज़रा सी देर बाद, दो-दो चार-चार की संख्या में, ये कण केंद्र से छूटकर अलग निकल पड़ते हैं। दरअसल इसी का नाम है रेडियो-ऐक्टिविटी। रेडियम के केंद्र से जो अदृश्य किरण निकलती है, उसमें मिली होती हैं तीन किरणें। मालूम है इनके क्या नाम हैं? इन्हें कहते हैं: अल्फा, बीटा और गामा। अल्फा किरण हीलियम के परमाणु का केंद्र है। उसमें होते हैं दो प्रोटोन और दो न्यूट्रोन। बीटा किरण होती है

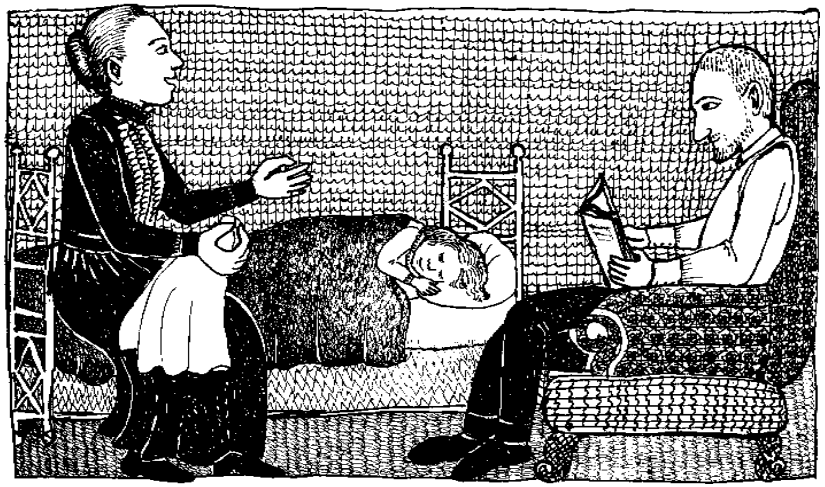

तेज़ दौड़ने वाली निगेटिव विद्युत का कण, या कह लो इलेक्ट्रॉन। और गामा किरण होती है साधारण प्रकाश जैसी। अंतर केवल यह होता है कि साधारण प्रकाश से उसकी तरंग कम बड़ी होती है!

रेडियो-ऐक्टिविटी के कारण रेडियम का हर परमाणु तेज़ बिखेर चुकने के बाद, यानी विकिरण के बाद, एक दूसरे मूल तत्व में बदल जाता है। हम तुम्हें बता चुके हैं कि वैज्ञानिकों का अब तक विचार था कि मूल तत्व बदलते नहीं हैं। लेकिन सच पूछो तो रेडियम का परमाणु धीरे-धीरे, क्रमशः बदलते-बदलते, करीब दो हज़ार वर्षों में एक तरह का शीशा बन जाता है।

इस आविष्कार का एक नतीज़ा और हुआ। नतीज़ा यह कि इस आविष्कार के सूत्र को पकड़कर परमाणु के भीतर से निकलने वाले तेज़ को काम में लाने की कोशिशें होने लगीं। इस तरह कुछ दिनों बाद यूरेनियम के परमाणु के तोड़ने, या विघटन, का हाल मालूम हुआ। यह इस विघटन का ही परिणाम है कि ऍटम बम बनाए जा रहे हैं।

परमाणु को तोड़ना! इतने बारीक लक्ष्य को भेदना! भला यह कोई आसान काम था? पर आदमी इसमें भी सफल हुआ। दुख की बात सिर्फ यह है कि मानव कल्याण की जिस भावना को लेकर रेडियम का जन्म हुआ, उससे उल्टी दिशा में जाकर आज ऍटम और हाइड्रोजन बम बनाए जा रहे हैं। परमाणु केंद्र के विस्फोट से बड़ी भारी शक्ति निकली। यही शक्ति जब बुरे आदमियों के हाथ में पड़ गई तो बुरे कामों में लगाई जाने लगी। वह विनाश और विध्वंस करने लगी।

जिस रात उन्होंने रेडियम का आविष्कार किया उस रात सोचो मारी और पियरे कैसे लग रहे होंगे! काम के पीछे पागल दो व्यक्ति! कवि या दार्शनिक जैसे! परस्पर प्रेम और अनुभूति में डूबे दो निराले जीव!

मारी अभी घर लौटी ही थी कि इरीन ने ''मां, मां.....'' की रट लगा दी। मारी उसके सिरहाने आ बैठी। बड़े प्यार से उसे मीठी-मीठी थपकियां देकर सुलाया। वह सो गई तो मारी उसकी एक फ्रॉक सीने लगी। सीते-सीते अचानक उसने पियरे से कहा: ''चलो, एक बार फिर उसे देख आएं।''

टूटी-फूटी बर्फ जैसी ठंडी प्रयोगशाला। उसमें भी था एक नन्हा शिशु। वह भी मां! मां! पुकार रहा था न!

''लाइट मत जलाना!'' पियरे को रोकते हुए मारी ने कहा। प्रयोगशाला में घुप्प अंधेरा था। इस अंधेरे में बूंद-बूंद रेडियम की चमकती आंखें ऐसी लग रही थीं जैसे कोई नन्हा शिशु उनकी ओर टकटकी बांधे देख रहा हो। कड़ी मेहनत के चार वर्ष! इन चार वर्षों के बाद प्रकृति के हाथों से उन्होंने रेडियम के जो गिने-चुने कण छीने थे, वे सचमुच अनमोल थे।

घर पर वे दोनों जैसे सोती इरीन के मुंह की ओर स्नेह से देखते रह गए थे, वैसे ही वे चमकीले रेडियम के कणों पर आंखें गड़ाए रह गए।

आखिर मारी अपने पति से कह ही तो उठी, ''अहा! देखो कितना सुंदर है!''

रेडियम के आविष्कार ने दुनिया के बहुत से देशों में हलचल पैदा कर दी। फ्रांस ही एक ऐसा देश था जहां शुरू-शुरू में इस आविष्कार की कद्र नहीं हुई। पियरे की नौकरी में कोई तरक्की नहीं हुई। जहां थे वहीं रहे।

मामूली मास्टर की तनख्वाह। घर का सारा खर्च। ऊपर से मारी को विश्वविद्यालय में काम दिलाने की समस्या। कोई स्त्री आज तक इतने ऊंचे आसन पर नहीं बैठ सकी थी.... खास कर वैज्ञानिकों के बीच। विश्वविद्यालय में मारी को रखने के मसले पर चारों ओर से शोर-गुल होने लगा। ईर्ष्या के कारण कुछ लोगों ने तो उसे बदनाम तक करना शुरू कर दिया। एक नई तरह की बीमारी थी यह। ऐसी बीमारी से मारी और पियरे पहले कभी नहीं जूझे थे। विज्ञान के पीछे पागल ये दोनों प्राणी चारों ओर की हालात को देखकर ऐसे रह गए जैसे उन्हें काठ मार गया हो!

इधर रेडियम की संभावनाओं को देखकर ब्रिटेन जैसे देशों के वैज्ञानिक तो दीवाने हो उठे। अब मालूम हुआ कि रेडियम यूरेनियम से बीस लाख गुना शक्तिशाली होता है। यह भी पता चला कि कैंसर नाम के रोग में कोई चीज़ कारगर हो सकती

है, तो रेडियम। मारी और पियरे ने रेडियम तैयार करने का तरीका निकाला। अमरीका आदि देशों में रेडियम तैयार होने लगा। क्यूरी दम्पत्ति ने जो तरीका निकाला था न, वही इस्तेमाल में लाया जाने लगा। मारी और पियरे से जब इसके लिए अनुमति मांगी गई तो उन्होंने कहा, यह हमारी घरेलू सम्पत्ति तो है नहीं: जनगण के कल्याण के लिए ही हमने रेडियम का आविष्कार किया था; रेडियम बनाने का तरीका हम सारे अखबारों में छपवा देंगे जिससे सब के काम आ सके।

मुनाफाखोर सेठों की तरह उन्हें रेडियम पर मुनाफा तो कमाना नहीं था।

उन्हें पहला पुरस्कार मिला स्विट्ज़रलैंड से। इसके बाद इंग्लैंड से। इस बीच मारी को डाक्टरेट की डिग्री भी मिल गई। फ्रांस के अधिकारियों को आखिर इस साहसी लड़की का लोहा मानना ही पड़ा। मारी को यूनिवर्सिटी में नौकरी मिल गई। लेकिन फ्रांस उनके आविष्कार के लिए उचित पुरस्कार देने को अब भी तैयार न था।

सन् 1903। दस दिसंबर को पदार्थ-विज्ञान का नोबल पुरस्कार बांटा गया। पुरस्कार का आधा भाग पियरे और मारी को और आधा बेकरेल को मिला। पियरे और मारी का नाम सब ओर गूंज उठा। कितने गर्व की बात थी यह मारी के बापू और भाई-बहनों के लिए। उनकी नन्हीं-मुन्नी मान्या! आज उसकी गिनती संसार के सबसे बड़े वैज्ञानिकों में थी। संसार में सबसे पहले किसी स्त्री को ऐसा यश प्राप्त हुआ तो उनकी मान्या को।

लेकिन सब दिन एक समान नहीं होते! मारी के जीवन में उलट-फेर हुआ। उसकी गोद में एक और नन्हीं-मुन्नी आई। गुड़िया की तरह सुंदर-सलोनी। नाम उसका रखा गया-ईव।

जैसे-तैसे दिन बीत रहे थे कि यकायक एक दिन एक भीषण दुर्घटना घटी।

एक दिन पियरे—वही पियरे जिनका मस्तिष्क नए-नए विचारों की खान के समान था, विचारों में खोए सड़क पर चले जा रहे थे। यकायक एक बग्घी-गाड़ी आई और उनका सिर उसके पहिए के नीचे आ गया।

दुख से कारण मारी पागल हो उठी। उसकी आंखों के सामने अंधेरा छा गया। कोई रास्ता नहीं सूझ रहा था। उसके सुनहरे संसार में अंधेरा फैलाकर, पियरे मारी के जीवन से सदा के लिए विदा हो गए।

बेचारी मारी। अकेली रह गई। जीवन में अब उसे अकेले ही जूझना था!

बड़ी लड़की इरीन और डाक्टर क्यूरी के सहारे मारी ने किसी तरह घर-गृहस्थी को टिकाये रखा। इरीन भी मां की तरह छोटी उम्र से ही विज्ञान के पीछे दीवानी थी। नन्हीं-मुन्नी ईव की तोतली बोली और इरीन की बातों से थोड़ा-बहुत सुख मिलता। उसी के सहारे मारी, पियरे के अभाव को कुछ समय के लिए भूल जाती।

पियरे की मृत्यु के बाद मादाम क्यूरी से कहा गया कि वह पेंशन ले लें। किंतु उन्होंने इंकार कर दिया। कहा—अभी मेरी काम करने की उम्र है, अभी से पेंशन क्यों लूं?

पियरे की मृत्यु से सारबान विश्वविद्यालय के अधिकारी भी संकट में पड़ गए। पियरे के सूने आसन पर कौन बैठे? कोई भी पुरुष-वैज्ञानिक इतना योग्य नहीं था। अंत में पदार्थ-विज्ञान विभाग का भार संभालने के लिए मादाम क्यूरी को ही बुलाया गया।

इससे पहले सारबान विश्वविद्यालय में किसी भी विभाग का इतना ऊंचा पद किसी महिला ने नहीं सम्भाला था।

मारी का जिस दिन पहला व्याख्यान हुआ, हॉल में तिल रखने की जगह न थी। झुंड के झुंड लोग यही सोचकर आए थे कि शायद कोई नाटकीय घटना घटेगी। मारी ने हॉल में कदम रखते ही छात्रों पर एक नज़र डाली। बिना किसी भूमिका के उन्होंने अपना व्याख्यान शुरू कर दिया—ठीक वहीं से, जहां से पियरे ने छोड़ा था। बहुत निराश होकर लौटना पड़ा उन लोगों को जो यह सोचकर आए थे कि पति के आसन पर बैठते ही दुख से कातर मारी अपने को सम्भाल न पाएगी। मारी ने व्याख्यान दिया विद्युत की गठन, परमाणु के विश्लेषण और रेडियो-ऐक्टिव पदार्थों के बारे में। बहुत सी नई-नई बातें बताने के बाद वह जैसे शांत और स्वाभाविक भाव से हॉल के भीतर आई थीं, वैसे ही धीरे-धीरे बाहर चली गईं।

मारी अब बहुत व्यस्त रहती थीं। लड़कियों को पढ़ाना। प्रयोगशाला में काम करना। सारबान में छात्रों को पढ़ाना। अपने बगीचे और घर-गृहस्थी की देख-भाल। एक नहीं, हज़ारों काम। ऊपर से एक और धुन चौबीस घंटे उन पर सवार रहती।

कौन सी धुन?

धुन यह कि पियरे की यादगार में एक बहुत बड़ी, बहुत अच्छी, प्रयोगशाला बनवाई जाए।

मारी क्यूरी

पति की मृत्यु के बाद, पुराना मकान छोड़, मारी ने शहर के बाहरी इलाके में छोटा-सा मकान लिया। दूर रहने से शहर जाने के लिए उन्हें तड़के गाड़ी पकड़नी पड़ती थी। शाम को घर लौटते-लौटते अंधेरा हो जाता। मां की अनुपस्थिति में दोनों लड़कियां क्या करेंगी, इसका इंतज़ाम मारी पहले ही कर जातीं। शनिवार-इतवार, या छुट्टी के दिन, या ऐसे ही किसी और दिन, मारी बेटियों के साथ साइकिल पर घूमने निकल जातीं। वह चाहती थीं कि उनकी बेटियां भी खूब स्वस्थ और साहसी बनें।

प्रयोगशाला में भी काम ज़ोर-शोर से ज़ारी था। इन्हीं दिनों एक अचंभे की बात हुई। मारी और देवियर्न ने रेडियम को ठोस धातु के रूप में बदल दिया। किन्तु एक बार ऐसा हो गया तो दुबारा फिर न हो सका। बाद में वह या कोई और रेडियम को धातु का रूप न दे सका।

1911 में मारी को फिर नोबल पुरस्कार मिला। इस बार रासायन-विज्ञान पर। क्या देश और क्या विदेश, हर जगह, हरेक की ज़ुबान पर मादाम क्यूरी का नाम था। इतने पर भी मारी वही पुरानी मान्या बनी रही; लजीली और भावुक लड़की। प्रचार से बचने के वह सदा उपाय करती रहती।

सुनो, एक दिलचस्प घटना सुनाऊं।

एक बार एक संवाददाता मारी के पास आया और उनसे पूछा, ''क्या आप बता सकती हैं कि मादाम क्यूरी कहां हैं?''

''जी, अभी-अभी मैंने उन्हें उस ओर जाते देखा है।'' एक ओर को इशारा करके मारी ने संवाददाता को चलता किया।

मारी अब एक घड़ी भी चैन से न बैठ पातीं। दिन भर काम में व्यस्त रहतीं।

इसी समय उनकी मातृभूमि से उनकी पुकार हुई। पोलैण्ड के वारसा नगर में तेजस्क्रियता सम्बन्धी एक प्रयोगशाला बनाई जाने वाली थी। मारी से कहा गया कि इस प्रयोगशाला का भार उन्हीं को सम्भालना होगा। मारी ने सोचा: अगर फ्रांस छोड़ कर चली जाती हूं तो पियरे की स्मृति में जिस प्रयोगशाला को बनाने के अब तक सपने देखती रही हूं, वह कभी न बन पाएगी। इतने दिनों की साध मन में ही रह जाएगी।

पोलैण्ड से आया निमंत्रण उन्होंने अस्वीकार कर दिया।

अब उनसे कहा गया कि फ्रांस से ही वह उस प्रयोगशाला का संचालन करें। हां, उसके उद्घाटन के समय अवश्य पहुंच जाएं।

सो, उद्घाटन के समय मारी वहां पहुंच गईं। अपनी मातृ-भाषा में पहली बार उन्होंने वैज्ञानिक विषय पर भाषण दिया। देश के लोगों ने दोनों हाथ उठाकर उनका अभिनन्दन किया।

बहुत दिनों बाद छुट्टियां बिताने के लिए मारी बेटियों के साथ स्विट्ज़रलैण्ड गईं। अहा, कितना अच्छा लगता है झोला लटकाए हुए पहाड़ी रास्तों पर घूमना।

लड़कियों को भी पहाड़ पर चढ़ना सिखाना था। इन्हीं दिनों सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक आइन्स्टाइन भी स्विट्ज़रलैण्ड में मौज़ूद थे। पहाड़ी रास्तों पर घूमते-घूमते आइन्स्टाइन मारी को सापेक्षता के सिद्धान्त के बारे में बताते रहते।

पियरे की मृत्यु के बाद उनकी याद में एक प्रयोगशाला बनवाने का सपना मारी बहुत दिनों से देख रही थीं।

1914 के जुलाई महीने में उनका सपना पूरा हुआ।

पेरिस की भूमि पर प्रयोगशाला का विशाल भवन गर्व से सिर उठाए खड़ा था। सामने रंग-बिरंगे फूलों का मनोहर बगीचा था; उसी में मारी के हाथों लगाया हुआ गुलाब का पौधा भी था।

इसी बीच छिड़ गया युद्ध। युद्ध के कारण-प्रयोगशाला का भवन तैयार हो जाने पर भी—प्रयोगशाला चार साल तक बंद रही। मारी के साथ काम करने वालों में से दो-एक को छोड़, बाकी सभी युद्ध के मोर्चे पर चले गए।

एक्स-रे की मशीनें उन दिनों मिलती न थीं। बहुत कम अस्पतालों में एक्स-रे का इंतज़ाम था। एक चलती-फिरती एक्स-रे गाड़ी तैयार करने के लिए मारी ने फ्रांस के महिला-संघ से रुपयों की मांग की। मारी के प्रयत्नों और महिला-संघ के दान से फ्रांस में पहली एक्स-रे गाड़ी तैयार हुई।

जर्मन सेना अब तक बढ़ते-बढ़ते पेरिस के निकट आ पहुंची थी। लगता था कि पेरिस अब गया, अब गया। फिर भी मारी पेरिस नहीं छोड़ना चाहती थीं। उन्होंने सोचा: अगर मैं स्वयं पियरे की प्रयोगशाला पर पहरा देती रही तो जर्मन लूट-पाट मचाने का साहस न करेंगे। हां, अगर उन्होंने यहां किसी को देखा नहीं, तो एक भी चीज़ न छोड़ेंगे।

मारी पेरिस में ही रहीं। उनके पास एक ग्राम बहुमूल्य रेडियम था। उसे हटाना आवश्यक था। कहीं वह जर्मनों के हाथ न पड़ जाए! मारी ने उसे बोर्दो के बैंक में रखने का प्रबंध किया। वह स्वयं बोर्दो गईं। गाड़ी में बड़ी भीड़भाड़, बड़ी धक्कामुक्की

थी। कांच की जिस नली में रेडियम था, वह बहुत भारी थी। खाने-पीने की फिक्र नहीं, सोने की फ्रिक नहीं। फिक्र थी मारी को तो बस एक चीज़ की—अपने रेडियम की। अंत में रेडियम को सुरक्षित जगह रखकर मारी दूसरे दिन सुबह लौट आईं। लौटकर आईं तो देखती क्या हैं कि पेरिस सुनसान पड़ा है; एकदम उजाड़ मालूम हो रहा है। पता चला कि जर्मनों को रोक दिया गया है, और पेरिस अब खतरे से खाली है।

यह मारी के अथक परिश्रम का ही नतीज़ा था कि दो सौ अस्तपतालों में एक्स-रे की मशीनें लग गईं और एक्स-रे गाड़ियों की संख्या बीस तक पहुंच गई। कुल मिलाकर दस लाख घायलों के इलाज का प्रबंध हो गया। मारी और उनकी पुत्री इरीन ने एक सौ पचास व्यक्तियों को रेडियोलॉजी की शिक्षा दी। फ्रांस ही नहीं मारी ने अब बेल्जियम के अस्पतालों का भी दौरा किया।

मारी को जब भी फुर्सत मिलती, पुरानी प्रयोगशाला के साज-समान को बांधकर पियरे क्यूरी की स्मृति में बने नए अस्पताल ले जातीं। वहां उसे खोलकर, झाड़-पोंछकर, चुन-चुनकर कमरे में सजातीं। इसी बीच बोर्दो जाकर वह रेडियम भी वापिस ले आईं। हर हफ्ते उससे किरण निकालकर ट्यूब में भरकर, इस्तेमाल के लिए अस्पताल भेजतीं।

युद्ध समाप्त होने के बाद—1919 की 11 नवम्बर को—मारी ने सियेन नदी के एक द्वीप में घर लिया। एक बार फिर मारी जी-जान से विज्ञान की साधना में

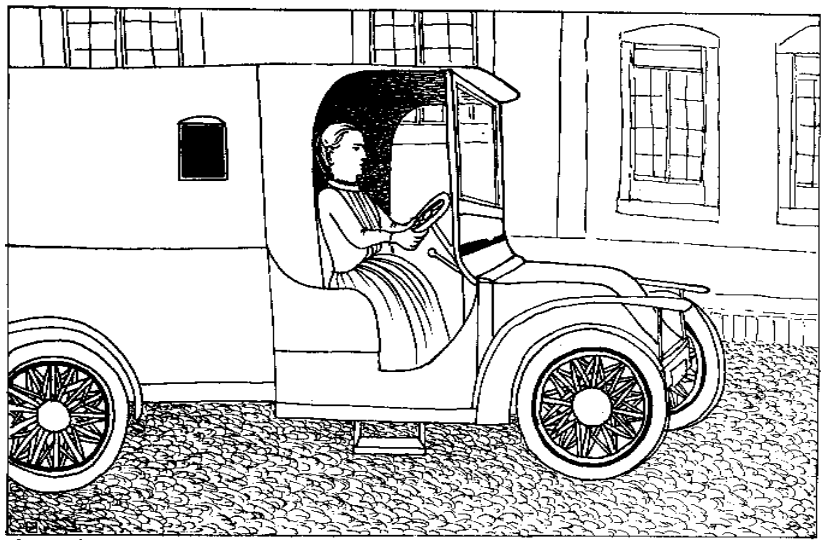

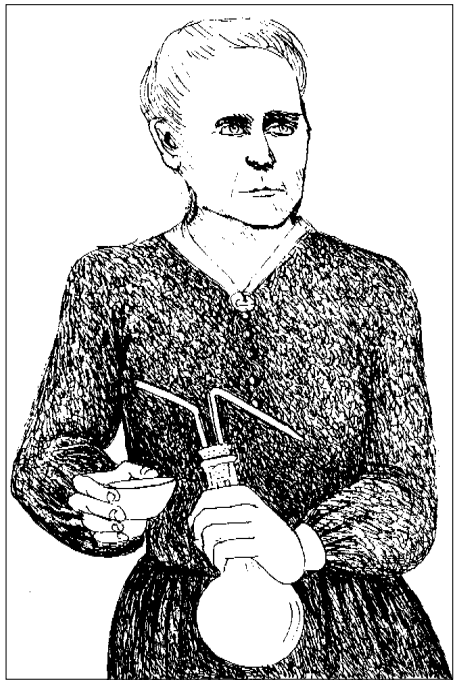

जुट गईं। पियरे क्यूरी की प्रयोगशाला में भी पूरे ज़ोर-शोर से काम शुरू हो गया।

इस प्रयोगशाला का काम मारी के ही कंधों पर था। संसार की पांच भाषाओं में रेडियम के बारे में जो कुछ लिखा गया था वह सब मारी की ज़ुबान पर था। मारी से शिक्षा पाना कम सौभाग्य की बात न थी। दूर-दूर के विद्यार्थी उनसे शिक्षा पाने के लिए आते। मारी सबेरे आठ बजे प्रयोगशाला में पहुंच जातीं। उनके छात्र भी तरह-तरह के प्रश्न लेकर उनके पास पहुंच जाते। कोई उनसे प्रश्न पूछ रहा है, तो कोई अपने नए काम दिखाने के लिए उन्हें खींचे लिए जा रहा है। छात्रों से पीछा छुड़ाना और प्रयोगशाला में अपने काम पर पहुंचना मारी के लिए कठिन हो जाता।

दोपहर में केवल एक बार मारी घर लौटतीं। घर पर भोजन की मेज़ पर बैठे-बैठे इरीन से पदार्थ-विज्ञान की चर्चा होती रहती। भोजन समाप्त होते ही मारी घर से निकल पड़तीं। कभी फूल खरीदने चल देतीं, कभी अपनी बेटी की बेटी यानी नाती से मिलने। इसके बाद फिर प्रयोगशाला पहुंच जातीं। कभी-कभी तो प्रयोगशाला में रात को दो बजे तक वैज्ञानिक प्रश्नों के हल निकालती रहतीं।

इतना काम, इतनी मेहनत। ज़रा सोचो, उनकी आंखों की क्या दशा हुई होगी। एक बार तो मारी की आंखें मानों बेकार ही हो गईं। चार बार ऑपरेशन हुआ तब कहीं उनकी आंखें बचीं। तो भी, आंखों की ज्योति पूरी तरह नहीं लौटी।

एक बार एक अमरीकी महिला मादाम क्यूरी से मिलने आईं। यह घटना सन् 1920 की है। बात-बात में महिला ने पूछा कि संसार की वह कौन-सी चीज़ है जिसे पाकर मादाम क्यूरी निहाल हो जाएगी। मारी ने उत्तर दिया: अन्वेषण-कार्य के लिए हमें एक ग्राम रेडियम की ज़रूरत है; क्या करें, खरीदने के लिए पैसे नहीं हैं।

एक ग्राम रेडियम मारी को भेंट रूप में देने के लिए इस महिला ने अपने देश लौटकर देशवासियों से चालीस हज़ार डालर इकट्ठे किए। लोगों ने मांग की कि यह भेंट मारी अपने ही हाथों से ग्रहण करें। इतने लोगों की बात मारी भला कैसे अनसुनी कर सकती थीं।

बाहर निकलकर ही मारी को मालूम हुआ कि संसार के लोग उन्हें कितना प्यार करते हैं। इतने दिनों तक उन्होंने अपने को सभा-सम्मेलनों और उत्सव-समारोहों से दूर रखा था। किन्तु अब उनकी समझ में आया कि केवल उनका नाम, उनकी उपस्थिति ही बहुतों को अच्छे कामों की प्रेरणा दे सकती है। अब तो उन्होंने दूसरे देशों के सभा-सम्मेलनों और उत्सव-समारोहों में जाना आरम्भ किया। वह दक्षिण अमरीका गईं, स्पेन गईं। इंगलैण्ड और चेकोस्लोवाकिया भी घूम आईं। दुनिया में किसी चीज़ से उन्हें सबसे ज़्यादा घृणा थी तो युद्ध से। अत: जब 'लीग आफ नेशन्स' ने विभिन्न राष्ट्रों के बीच भाई चारा कायम करने के लिए एक अन्तर्राष्ट्रीय कमेटी बनाई तो मारी ने, एक सदस्या की हैसियत से, उसके कार्यों में सक्रिय भाग लेना शुरू कर दिया। उन्होंने इस बात की कोशिश की कि संसार के सभी देशों में एक प्रकार की वैज्ञानिक शब्दावली काम में लाई जाए और वैज्ञानिक पुस्तकों और आविष्कारों की पूरी तालिका तैयार की जाए। मारी चाहती थीं कि कोई भी प्रतिभावान वैज्ञानिक—वह किसी भी देश का क्यों न हो—पैसे के अभाव में अपना काम न रोके। वह चाहती थीं कि इसके लिए एक अच्छी योजना बनाई जाए। उनके स्वप्नों का संसार एक ऐसा संसार था जहां स्वतंत्रता और शांति का राज्य हो, जहां विज्ञान पर कोई अंकुश न हो।

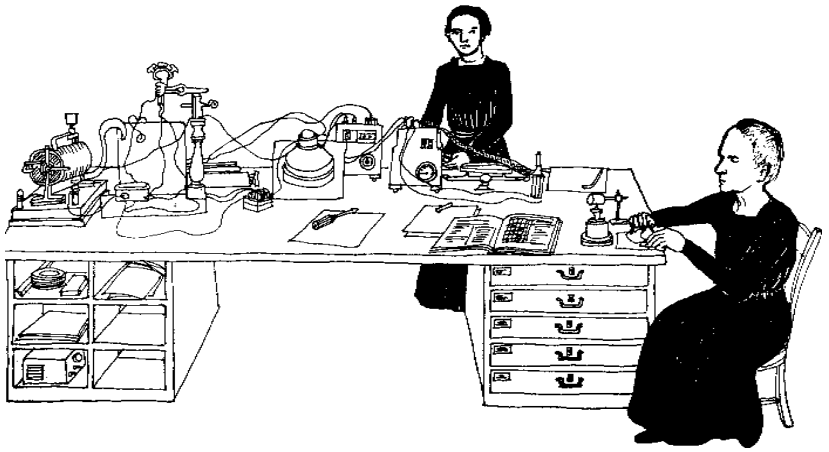

अब मारी ने बीड़ा उठाया कि वारसा में एक रेडियम प्रतिष्ठान खड़ा करेंगी। उन दिनों मारी की बहन ब्रोन्या पोलैण्ड में ही थीं। उन्होंने देशवासियों से सहायता मांगी। देश भर में जगह-जगह दीवारों पर बड़े-बड़े पोस्टर लगाए गए। मारी की तस्वीर के साथ एक डाक टिकट भी निकला। पोस्टकार्ड में लिखा रहता था: 'मारी स्क्लोडोव्स्का प्रतिष्ठान के लिए एक ईंट आप भी खरीदिए।' इसके साथ ही मारी का छोटा-सा संदेश भी था: 'वारसा में एक रेडियम प्रतिष्ठान बने—यही मेरी कामना है।'

सन् 1925।

प्रतिष्ठान की नींव रखने के लिए मारी पोलैण्ड आईं। थोड़े दिनों में ही प्रतिष्ठान बनकर तैयार हो गया। लेकिन...

लेकिन क्या?

लेकिन रेडियम कहां से आए?

एक बार फिर अमरीका के साधारण जनों ने मादाम क्यूरी की पुकार सुनी। मारी को रेडियम लाने के लिए फिर एक बार अमरीका जाना पड़ा। अमरीकी जनता का यह उपहार मारी ने स्वयं अपने हाथों वारसा पहुंचाया।

कैसी अद्‌भुत शक्ति वाली स्त्री थीं मारी? मेहनत करते-करते उनकी उंगलियां सख्त पड़ गई थीं। अब तो वे जवाब भी देने लगीं। आंखों की ज्योति भी बहुत कम हो गई। किन्तु अब भी मारी यह न मानती थीं कि उनके कर्तव्य पूरे हो गए हैं। एक पुस्तक भी तो लिखनी थी उन्हें। पियरे का और उनका एक सपना था। सपना यह कि एक प्रयोगशाला बने, रेडियम प्रयोगशाला। यह सपना भी पूरा हुआ। पेरिस में ही क्यों, वारसा में भी रेडियम की प्रयोगशाला खड़ी हो गई। सो मान्या की खुरदरी मेहनती उंगलियों ने अब कलम संभाली।

कलम चलती रही, चलती रही। मारी ने लिखा। रेडियम का इतिहास लिखा। तिल-तिल ज्ञान की जो संपदा उन्होंने जमा की थी, जीवन के अंतिम क्षण तक वे उसे दान करती रहीं। उन्होंने लिखा, लिखती रहीं। उनकी पुस्तक का नाम पड़ा—तेजस्क्रियता।

किताब लिख गई। हाथ ने और आगे हिलने से इंकार कर दिया। आंखें भी काम न देतीं। बार-बार आंखों के सामने अंधेरा छा जाता।

डाक्टरों ने जांच की। उन्होंने कहा—जीवन की सारी शक्ति लगाकर जिस रेडियम को इन्होंने प्रकृति के हाथों से छीना और समाज के हवाले किया है, वही

इन्हें मृत्यु की ओर लिए जा रहा है; हां, सचमुच मृत्यु की ओर लिए जा रहा है। मारी के रक्त कणों को रेडियम धीरे-धीरे नष्ट कर रहा था। इस विकीरण वाले पदार्थ को बार-बार छूने, उठाने और रखने से ही मारी के हाड़-मांस में, खून में, विष फैल गया था।

सन् 1934।

आसमान नीला है। सूर्य अपनी लंबी यात्रा पर निकलने की तैयारी कर रहा है।

सूर्य की प्रथम किरण ने मारी के कमरे के बिछौने का स्पर्श किया। ऊंचा माथा। माथे के नीचे बंद आंखें। आंखों के नीचे घनी काली छाया। मारी मौन।

मारी का शरीर स्थिर है। मारी ने अटूट मौन धारण कर लिया है - हृदय-स्पंदन रुक गया है।

दूर...

रेडियम की प्रयोगशाला में कोई रो पड़ा : ''हाय हम सब हार गए!''

किन्तु पास ही, अंधेरे कमरे में, रेडियम के चमकते कण अपलक सब कुछ देख रहे थे। ऐसा मालूम होता था मानो वे कह रहे हैं: ''मारी है, मारी जीवित है!''

मारी मरी नहीं! मारी अमर है!

❐❐❐